व्रतोत्सव-विधान

लेखक—

श्री रामेश्वर प्रसाद ओझा

ओझा-बन्धु आश्रम, इलाहाबाद।

मूल्य ॥=)

प्रकाशक—

चन्द्रशेखर शास्त्री

ओझा बन्धु आश्रम

इलाहाबाद।

प्रथमवार १०००

मुद्रक—

काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भर नाथ बाजपेयी,

ओंकार प्रेस,

प्रयाग।

व्रत और उत्सव

किसी जाति के यथार्थ स्वरूपका ज्ञान उसके त्योहारों से होता है। ये त्योहार जाति के उत्थान-पतन के परिचायक होते हैं। अतएव जीवन संग्राम में दौड़ लगानेवाले कर्म-वीरों के लिए इनका बड़ा महत्व है। रामनवमी, व्रत भी है और उत्सव भी। कृष्णजन्माष्टमी व्रत भी है और उत्सव भी। रामजन्म की कथा पढिए। अयोध्या के राजा हैं राजा दसरथ। उनकी उमर बहुत अधिक बीत गयी है। लड़का नहीं हुआ है। राजा को अपने वंश चलने की चिन्ता नहीं है, उन्हें चिन्ता है कि मेरे बाद राज्य का पालन कौन करेगा। कौन प्रजा के दुःखों को दूर करेगा। राजा की इस चिन्ता की खबर मन्त्रियों को लगी। लोग भी चिन्तित हुए। वशिष्ठ बुलाये गये। उन्होंने ऋष्यशृंग को बुलाकर यज्ञ कराने की सलाह दी। यज्ञ हुआ, रामचन्द्र आदि का जन्म हुआ, इन चार पुत्रों ने बड़े होकर क्या किया इसका विचार रामनवमी के दिन व्रत करनेवालों को करना ही पड़ता है। पिताकी आज्ञा के लिए पुत्र को कितना कष्ट उठाना चाहिए। छोटे भाई और बड़े भाई का आपस में कैसा व्यवहार होना चाहिए। यदि किसी बलवान से शत्रुता हो और अपने पास उसके योग्य साधन न हो, उस समय क्या चुप हो जाना

चाहिए या कोई उपाय करना चाहिए आदि बातों का ज्ञान हम को रामचरित से होता है। रामनवमी का व्रत करने वाला प्रत्येक हिन्दू प्रतिवर्ष इस शिक्षा को ग्रहण करता है। जिस समय कृष्णचन्द्र का जन्म हुआ है, उस समय देश की अवस्था और भी विचित्र थी। राजा कंस का राज था। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को कैद कर लिया था। राजस्वार्थ इतना अधिक बढ़ गया था कि जिसे सुनकर अश्चर्य होता है। उसने अपनी बहन को इसलिए कैद किया था कि किसीने कह दिया कि इसके गर्भ से उत्पन्न बालक तुमको मारेगा। संसार का नियम है कि अपराध प्रमणित होने पर अपराधी को दंड दिया जाय। पर यहाँ तो अपराध की सम्भावना भी नहीं है। केवल एक आदमी ने कहा है कि इस कन्या के आठवें गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा, वह तुमको मरेगा। राजाने यदि इसे सच भी मान लिया तो उसे आठवें गर्भ को नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिए था। पर मालूम नहीं गणित के किस नियम के अनुसार उसने पहले से लेकर आठवें तक प्रत्येक गर्भ को आठवां समझ लिया और सभी को मार दिया। मथुरा के राजा की ऐसी न्यायबुद्धि थी। मगध का दूसरा राजा था जरासन्ध। वह बड़ा बलि था। बलके घमंड में आकर दुर्बल राजाओं पर वह चढ़ाई करता और उन्हें कैद कर लेता। इस प्रकार वह अनेक राजाओं को कैद कर चुका था। ऐसे ही समय

में श्रीकृष्ण का जन्म कंस के कैदखाने में हुआ। माता-पिता के संस्कारों का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ता है यह मानी हुई बात है। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव और माता देवकी के भाव उस समय कैसे थे यह बात बिना बतलाये भी समझी जा सकती है। उनके भावों से वह गर्भस्थ बालक अवश्य ही अनुप्राणित हुआ होगा। अतएव वह बालक राजविरोधी भावों को लेकर ही उत्पन्न हुआ था और उसने अधर्मी राजाओं को नष्ट करके धर्म राज्य की स्थापना की इसी प्रकार के भाव जन्माष्टमी के व्रत करनेवालों के मन में उठते होंगे या उठने चाहिए। प्राचीन इतिहास के ऐसे भावों से किसी भी उन्नतिकामी जाति का अनुप्राणित होना मंगल की बात है इसमें सन्देह नहीं।

उत्सव किसी प्राचीन घटना के स्मारक होते हैं। किसी महापुरुष के जन्मदिन के प्रति जाति के भावों के बतलाने वाले होते हैं। रामनवमी के दिन रामचन्द्र का जन्म हुआ था। उनके जन्म से जाति का कल्याण हुआ है। ऋषियों का भय दूर हुआ है, धर्मद्रोही राक्षसों का विनाश हुआ है मर्यादा का स्थापना हुई है। अतएव उनका जन्मोत्सव मनाया जाता है। धर्मस्थापन के लिए उन्होंने जो उपाय काम में लाये, उनपर विचार किया जाता है। उत्सवों का उद्देश्य है आनन्द के द्वारा शिक्षा प्राप्त करना। उस समय की स्थिति से अपनी वर्तमान स्थिति को मिलाना और

उससे लाभ उठाना। यद्यपि इस समय हमारी असावधानी हमारा मूर्खता से उत्सवों का उद्देश्य पूरा पूरा पालित नहीं होता। उत्सवों में वहुत सी मूढ़ धारणाएँ प्रचलित हो गयीं हैं। इतना होने पर भी उत्सवों की उपयोगिता में सन्देह नहीं किया जा सकता। यदि कोई मूर्खतावश अपनी तलवार से अपना गला काट ले तो इसमें तलवार का अपराध नहीं समझा जाता; किन्तु अपराधी समझा जाता है उसका उपयोग करने वाला। जिस वस्तु से वह आत्मरक्षा कर सकता था, उसीसे यह वह आत्म विनाश करता है तो इसके लिए कोई क्या करे। कोई भी वस्तु स्वाभाव से न हितकारी है और न अहितकारी। उसकी हितकारिता या अहितकारिता उसके उपयोगपर निर्भर है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान का कहना है कि अन्न से प्राणों की रक्षा होती है पर यदि उसका उपयोग मात्रा से अधिक किया जाय तो वह प्राणसंहारक बन जाता है, इसी प्रकार विष प्राणसंहारक है पर उसका युक्तिपूर्वक उचित उपयोग किया जाय तो वह रसायन हो जाता है। और उदाहरण सुनिए-गंगा में डूबकर मनुष्य प्राण भी दे सकता है और उसमें स्नान करके तृप्ति भी लाभ कर सकता है। जिस आग से मनुष्य अपने लिए भोजन बनाता है, उसीसे वह जल भी सकता है।

नाक पर मक्खी बैठती है इसलिए नाक कटाना उचित

नहीं, किन्तु मक्खी हटाने का ही उद्योग करना चाहिए। उत्सवोंका उपयोग आज अनुचित ढंगसे होता है, ये उत्सव हानिकारी हैं उसका कुछ विशेष अर्थ नहीं है। राम और कृष्णके जन्मोत्सवों को ही लीजिए। क्या इस समय भी इनके उचित उपयोग से हम लाभ नहीं उठा सकते। क्या रामचन्द्रका मर्यादामय जीवन और कृष्णचन्द्र का नीतिमय जीवन हमारे लिए आवश्यक नहीं हैं। क्या इनके अनुशीलनसे इस समय भी हम लाभ नहीं उठा सकते। क्या भगवान रामचन्द्र की मर्यादा हमारे लिए इस समय अनुपयोगिनी है।

व्रत हैं धार्मिक अनुष्ठान। इहलोक और परलोक के कल्याणकी कामनासे व्रत किये जाते हैं। व्रत, उपवास, हवन, यज्ञ, पूजन आदि इसके अङ्ग हैं। रामनवमी, जन्माष्टमी शिवरात्रि आदि व्रत भी हैं और उत्सवभी। अतएव इनके अनुष्ठान में दोनों के विधान किये जाते हैं। स्नान उपवास पूजन आदि के साथ ही साथ उत्सव भी किया जाता है। विजयादशमी केवल उत्सव है, अतएव उसमें व्रतका विधान नहीं है। उपवास नहीं किया जाता और न किसी खास प्रकार का स्नानही किया जाता है।

उद्देश्य विशेषकी सिद्धि के लिए व्रत किये जाते हैं। अतएव जिस व्रतका जो उद्देश्य है, उसके लिए प्रातःकाल संकल्प करना चाहिए और पुनः आगे के सब विधान पूरे

किये जाने चाहिए। व्रत शब्द का अर्थ है उद्देश्य विशेष के साधनके लिए तदनुकूल नियमों का पालन करना। इसबात को ध्यान में रखकर व्रतका अनुष्ठान करना चाहिए।

आजकल व्रतके नामपर अति की जाती है। कुछ लोग तो व्रत के दिन इतना अधिक भोजन का प्रवन्ध करते हैं कि वह एक खास भोज हो जाता है और कुछ लोग विलकुल निराहार निर्जल व्रत करते हैं। दोनों काम अच्छे नहीं। प्रत्येक व्रत का अपनी अपनी विधि है। जिस व्रतकी जैसी विधि है, वह व्रत वैसेही करना चाहिए। उसके विपरीत करना अनुचित है। स्त्रियों में प्रायः यह रीति प्रचलित है कि वे व्रतके पहले दिन तरह तरह के पकान्न वनाती हैं और रातको बारह बजे के वाद खा लेती हैं, जिससे दूसरे दिन भूख न लगे। पर ऐसा करके वे अपना व्रत खण्डित कर लेती हैं, क्योंकि बारह बजे रात के वाद दूसरा दिन प्रारम्भ हो जाता है, उस समय खाना, व्रत में खाना है, फिर निर्जल का अर्थ क्या होगा। व्रत के पहले दिन हल्का भोजन करना चाहिए, सधवा स्त्रियों के लिए निराहार, निर्जल व्रत करना मना है यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। व्रत के दिन ऐसा कोई काम न करना चाहिए, जिससे क्रोध उत्पन्न हो, प्रसन्न चित्त रहना चाहिए और व्रत के विधानों को पूरा करना चाहिए।

—रामेश्वर

विषय-सूची

व्रतोत्सव विधान

नव वर्ष

नवीन वर्ष का आरम्भ बड़े उत्साह से मनाया जाता है। अन्य देशों की जातियाँ भी उस दिन का स्वागत बड़े उत्साह से करती हैं, भारतवासी भी अपने नवीन वर्ष का स्वागत बड़े उत्साह और उमंग से करते हैं। हमारा नववर्ष आरम्भ होता है चैत्र शुक्ल प्रतिपद से।

प्राचीन समय में भारतवासियों ने अपने कार्यों को चार भागों में बाँट रखा था और सुविधा की दृष्टि से इन चारों के लिए भिन्न भिन्न समयों में वर्ष की कल्पना भी

उन लोगों ने की थी। वे चार भाग थे धर्म, राजनीति, व्यापार तथा सर्व जनीन व्यवहार।

धर्म क्रियाओं का वर्ष प्रारम्भ होता था भादों से। श्रावण की पूर्णिमा को उपाकर्म, नये वर्ष के स्वागत में किया जाता था। इस कर्म में त्रिवर्ण शामिल होते थे। यह उत्सव चातुर्मास्य के बीच में किया जाता था, उस समय सब काम-धाम एक प्रकार से बन्द रहते थे।

राजनीतिक वर्ष आरम्भ होता था कुआर की विजया-दशमी से। उस समय तक बरसात बीती रहती है, नदियाँ उतर जाती हैं, यात्रा के उपयुक्त समय हो जाता है। उस समय राजालोग अपने राज्य में भ्रमण के लिए निकलते हैं। प्रजा के दुख कष्टों को सुनते हैं तथा उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं। विजयादशमी के दिन राजा से प्रजा के प्रतिनिधि मिलते हैं। उनसे राजा को अपने राज्य की बातें मालूम होती हैं और राजा उसीके अनुसार काम करते हैं।

व्यापारिक वर्ष प्रारम्भ होता है दीवाली से। उसी समय लेन-देन ठीक किया जाता है, खाता बदला जाता है और व्यापार सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ किये जाते हैं।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन से सर्वजनीन वर्ष प्रारम्भ

होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सब मिल कर इस नववर्ष का स्वागत करते हैं।

प्रधानतः भारत में भारतीयों के ये ही चार नववर्ष माने जाते हैं। धर्म से प्रारम्भ होता है, और उस पर राजनीति की स्थापना होती है। राज्य के द्वारा रक्षा का प्रबन्ध हो जाने पर व्यापार प्रारम्भ होता है। व्यापार के द्वारा धनार्जन करने पर सब लोग होली का त्योहार मनाते हैं। होली में सब भेद भाव दूर हो जाता है। छूआ-छूत की बात जाती रहती हैं, बड़ा छोटा का भेद भूल जाता है। सभी साथ मिल जाते हैं। चार नदियाँ भिन्न भिन्न दिशाओं से चलकर जल एकत्र करती हुई एक स्थान पर मिलतीं और एक हो जाती हैं। इसे ही कहते हैं भारतीय जाति-समुद्र।

साधारण नववर्ष का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है, यह बात लिखी जा चुकी है। यह नववर्ष क्यों हुआ, इसके सम्बन्ध में वेदों तथा पुराणों में चर्चा आयी है।

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न अयुष्मती प्रजा रायस्योपेण संसृजः॥ अथर्व।

इस मन्त्र से संवत्सर की प्रतिमा की स्तुति की गयी

है और उनसे धनसम्पन्न प्रजा की प्रार्थना की गयी है। पुराणों में इस दिन ब्रह्मा की पूजा करने का उपदेश दिया गया है। यही सृष्टि का पहला दिन माना गया है; अतएव, उस दिन सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की पूजा का विधान है। इस दिन महाशान्ति करने का विधान है, जिससे सब प्रकार के पाप दूर हों। काल भगवान् की पूजा का भी विधान है। निमेष, त्रुटि, लव, क्षण, काष्ठा, कला, नाडी, मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात आदि काल के अंशों को नमस्कार करके काल भगवान् की पूजा करनी चाहिए। पुनः हवन, ब्राह्मण-भोजन आदि के द्वारा इस उत्सव को समाप्त करना चाहिए। इस दिन अपने घर को तोरण पताका आदि के द्वारा शोभित करना चाहिए।

कहा जाता है कि रामचन्द्र ने रावण का नाश करके अयोध्या में पदार्पण किया था और इसीके उपलक्ष्य में नवरात्र का व्रत मनाया जाता है। पर प्रधानतः इस नवरात्र में देवी की ही उपासना होती है।

इस नववर्ष के दिन नीम का भक्षण करना उचित है। स्नान आदि से पवित्र होकर पंचाङ्ग का फल सुनना चाहिए और सुनानेवाले ज्योतिषी को दक्षिणा देनी चाहिए।

नीम की पत्तियों के साथ मिश्री खाने की भी आज्ञा

है। लौकिक उन्नति, व्यवहारिकसुख-समृद्धि आदि की कामना से ऊपर की क्रियाएँ की जाती हैं। यद्यपि इस समय सारे देश में यह उत्सव भले प्रकार नहीं मनाया जाता और सब लोग इसकी उपयोगिता नहीं स्वीकार करते; लेकिन, ऐसा होना नहीं चाहिए। नववर्ष का स्वागत नवीन उत्साह और उमंग के साथ करना उचित है।

अरुन्धती व्रत

यह व्रत स्त्रियों का है। अचल सौभाग्य पाने की कामना से चैत महीने के शुक्ल पक्ष की परिवा से लेकर तीज तक यह व्रत किया जाता है।

"इस व्रत के करने से जन्म-जन्मान्तर में मुझे वैधव्य का दुख न भोगना पड़े, पुत्रवती होऊँ और अचल सौभाग्य पाऊँ" ऐसा संकल्प करके स्त्रियाँ इस व्रत को प्रारम्भ करती हैं। चैत की शुक्ल द्वितीया को ध्रुव, वशिष्ट और अरुन्धती की तीन मूर्तियाँ बनायी जाती हैं और विधिपूर्वक उनका पूजन करके उनसे धन, पुत्र और सौभाग्य की याचना की जाती है।

व्रतकाल में निम्न-लिखित कथा सुनी जाती है—

पुराने जमाने में एक पण्डित ब्राह्मण की युवती कन्या विधवा हो गयी थी। वह विधवा यमुना के तट पर जाकर तपस्या करने लगी। तपस्या करते जब कुछ दिन बीत गये तो एक बार महादेव-पार्वती उसी रास्ते होकर निकले। उस विधवा को तपस्या करते देखकर पार्वती को बड़ा दुख हुआ और उन्होंने महादेव से उसके इस छोटी उम्र में विधवा होने का कारण पूछा। महादेव ने कहा कि पार्वती, पहले

जन्म में यह विधवा एक ब्राह्मण था । इसने एक सुशील ब्राह्मण कन्या का पाणिग्रहण किया और कुछ ही समय बाद विदेश में जाकर दूसरी स्त्रियों के मोह में पड़ गया । उसी पाप के कारण इसे स्त्री-जन्म मिला है और यह दुःख इसे भोगना पड़ा है । हे पार्वती, जो पुरुष अपनी सुशीला और पतिव्रता स्त्री को छोड़ कर दूसरी स्त्रियों में चित्त लगाते हैं या परदेश जाकर उसे भूल जाते हैं, अगले जन्म में उन्हें स्त्री का जन्म लेना पड़ता है और वे विधवा होते हैं । जो स्त्रियाँ अपने पति से सन्तुष्ट नहीं होतीं और कुपथ गामिनी होती हैं उन्हें भी विधवा होना पड़ता है ।" महादेव की ऐसी बातें सुनकर उस ब्राह्मण कन्या पर पार्वती को बड़ी दया आयी और उन्होंने उसके उद्धार का उपाय पूछा । महादेव ने कहा—"पार्वती, जो यह विधि-पूर्वक अरुन्धती व्रत करेगी तो अगले जन्म में यह सुखी होगी और फिर कभी इसे वैधव्य दुख भोगना न पड़ेगा ।"

उसी समय से स्त्रियाँ इस व्रत को करतीं और इस कथा को कहती हैं । विधिपूर्वक इस व्रत को करने और श्रद्धा से इस कथा को सुनने से चित्त की वृत्ति पाप से पराङ्मुख होती और अचल सौभाग्य मिलता है । कभी वैधव्य दुःख भोगना नहीं पड़ता ।

हरतालिका व्रत

भादो के शुक्ल पक्ष की तृतीया को यह व्रत कुमारी कन्याएँ और सौभाग्यवती स्त्रियाँ करती हैं। इस दिन तिल और आँवले का उबटन लगा कर यह संकल्प करना चाहिए—

"अपने जन्म जन्मान्तर के पापों का नाश करके शिव-पार्वती की प्रसन्नता के हेतु,सात जन्मों तक अखण्डित रहने वाले सौभाग्य की कामना से यह हरतालिका व्रत करती हूँ।"

ऐसा संकल्प करके पहले गणेश का, फिर शिव-पार्वती का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। पूजन के बाद फल-मूल-वस्त्र तथा दक्षिणा देकर पढ़े लिखे ब्राह्मण को सन्तुष्ट करना चाहिए। आज के दिन रात्रि-जागरण करने से शिव जी प्रसन्न होते हैं।

पतिरूप से शिव को प्राप्त करने के लिए पार्वती ने यह व्रत किया था। हिमवान पार्वती के पिता थे। कन्या की यह तपस्या देख कर चिन्तित हो वे सोच रहे थे कि इस कन्या के लिए योग्य पात्र कौन है। उसी समय नारद जी उनके पास आये और उन्होंने सलाह दी कि विष्णु ही पार्वती के लिए श्रेष्ठ वर हैं। नारद की बात हिमवान् को जँच गयी। उन्होंने पार्वती से जाकर कहा

कि बेटी, अब तुम अपनी तपस्या समाप्त करो। मैंने तुम्हें विष्णु को देने का संकल्प किया है। पिता की इस बात से पार्वती को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने सखियों से कहा कि मनही मन मैंने महादेव को स्वीकार किया है। यदि पिता जी मुझे विष्णु को देना चाहेंगे तो मैं प्राण-त्याग कर दूँगी।

पार्वती की बात सुन कर सखियाँ उन्हें घोर वन में ले गयीं और कठोर व्रत करने को कहा। पार्वती ने विधि-पूर्वक भादों के शुक्ल पक्ष की तृतीया को व्रत किया और उससे महादेव प्रसन्न हुए। उन्होंने पार्वती को वर दिया—"तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।"

हिमवान् ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने पार्वती को घर बुला लिया और शिव के साथ उन्हें ब्याह दिया। इस दिन आलियों—सखियों—के द्वारा हरी हुई पार्वती ने व्रत किया था। इससे इस व्रत का नाम ही 'हरतालिका' व्रत पड़ गया।

सौभाग्य की इच्छा रखनेवाली स्त्रियों को यह व्रत अवश्य करना चाहिए। जो स्त्रियाँ यह व्रत नहीं करतीं और इस दिन आहार करती हैं, सात जन्म तक वे वन्ध्या और विधवा होती हैं, ऐसा कहा जाता है।

गणेश चतुर्थी

यह व्रत भादों के शुक्ल चतुर्थी को किया जाता है। "पुत्र-पौत्र-धन-विद्या-जय-यश आदिकी प्राप्ति-कामना से गणेश जी की प्रसन्नता के हेतु यह व्रत करती हूँ।" ऐसा संकल्प करके इस व्रत को प्रारंभ करना चाहिए।

गणेश की पार्थिव मूर्ति बनाकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए और इस मन्त्र से ध्यान करना चाहिए—

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्।
पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम्॥

ध्यान करके विधिपूर्वक षोड़शोपचार से गणेश का पूजन करे। पंचामृत में स्नान कराके, शुद्ध जल में स्नान करावे। चन्दन, अक्षत, फूल और धूप-नैवेद्य दे। पुनः फल पान और दूब आदि से पूजा करके नमस्कार करे। पार्थिव के पास २१ पूआ बना कर रखे और उन्हें गणेश को समर्पित करे। उन २१ पुओं में से एक गणेश जी के लिए

छोड़ दे; बाकी दस ब्राह्मण को दे दे, दस अपने लिए रख छोड़े।

कुरुक्षेत्र के युद्ध में युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा था कि हे भगवान्! मनुष्य की मनःकामना सिद्धि का कौन उपाय है? किस प्रकार मनुष्य धन, पुत्र, सौभाग्य और जय प्राप्त कर सकता है, यह आप मुझे बतलाइये।"

भगवान् ने उत्तर दिया—यदि तुम पार्वती-पुत्र गणेश का पूजन विधि पूर्वक करोगे तो निश्चय ही तुम्हें राज्य मिलेगा।

भगवान् की आज्ञा के अनुसार युधिष्ठिर ने गणेश-चतुर्थी का यह व्रत किया और उन्हें युद्ध में विजय मिली।

इस व्रत के अन्त में लाल रंग के दो वस्त्रों का दान करने का विधान है और व्रत समाप्त करके ब्राह्मणों को भोजन कराना पुनः आप भोजन करना चाहिए।

इसी चतुर्थी को चन्द्रदर्शन का निषेध भी है। भगवान् ने इस दिन चन्द्रमा का दर्शन किया था और उन्हें कलंक लगा था। इसीसे आज के दिन चन्द्रमा को न देखना चाहिए। यदि संयोग से कहीं किसी को चन्द्रमा दीख ही जाय तो निम्न लिखित मंत्र को जपना चाहिए—

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्ववता हतः ।
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक॥

चन्द्रदर्शन से कलंक लगने के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण की बसायी द्वारका नगरी में सत्राजित् नामका एक यादव रहता था, उसने सूर्य की वड़ी उपासना की। प्रसन्न हो कर सूर्य ने स्यमन्तक नामक मणि अपने गले से उतारकर सत्राजित् को दिया। वह मणि सब मणियों में श्रेष्ठ, अत्यन्त चमकीला और आकर्षक था। एक दिन वह मणि पहन कर सत्राजित् श्रीकृष्ण की सभा में गया। मणि को देखकर श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और हँसी में उन्होंने वह मणि सत्राजित् से माँगा। सत्राजित् ने मणि न दिया और घर आकर अपने छोटे भाई प्रसेन के गले में वह मणि पहना दिया और उससे श्रीकृष्ण के मणि माँगने की वात भी कही।

एक दिन वह मणि बाँधकर प्रसेन शिकार खेलने गया। वहाँ एक सिंह ने उसे मारकर मणि उससे छीन लिया। उस सिंह को मार कर जाम्बवान नामके रीछ ने उससे भी मणि छीन लिया।

जब कई दिन बीत गये और प्रसेन न लौटा तो सत्राजित् को बड़ी चिन्ता और शंका हुई। उसने द्वारका में

हल्ला मचा दिया कि श्रीकृष्ण ने मेरे भाई प्रसेन को मार डाला है और मणि उससे छीन लिया है।

श्रीकृष्ण इस अपवाद से बड़े दुखी हुए और बहुत से आदमियों को साथ लेकर वन में चले गये। वहाँ उन्हें उस रीछ का पता लगा, जो सिंह को मार कर मणि छीन ले गया था। श्रीकृष्ण लोगों के मना करने पर भी रीछ की गुफा में घुस गये और २९ दिनों तक उससे घोर युद्ध करके उसे परास्त किया। श्रीकृष्ण का पराक्रम देखकर रीछ प्रसन्न हुआ और उसने अपनी बेटी जाम्बवती का ब्याह श्रीकृष्ण से कर दिया और वह मणि भी उन्हें दे दिया।

मणि लेकर श्रीकृष्ण फिर द्वारका में आये। मणि उन्होंने सत्राजित् को लौटा दी और लोगों में सारी बातें भी प्रकाशित कर दीं। सत्राजित् बहुत लज्जित हुआ और उसने अपनी पुत्री सत्यभामा श्रीकृष्ण को ब्याह दी और मणि भी उन्हें देने लगा; पर, श्रीकृष्ण ने उसे नहीं लिया।

कुछ दिनों के बाद श्रीकृष्ण द्वारका से इन्द्रप्रस्थ चले गये और शतधन्वा नामके यादव ने सत्राजित् को मार कर मणि ले लिया। जब यह खबर श्रीकृष्ण को मिली तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने शतधन्वा से युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। शतधन्वा वह मणि अक्रूर नाम के

अपने साथी को देकर द्वारका छोड़कर भाग निकला ; पर, श्रीकृष्ण ने उसे पकड़ लिया और मार डाला। जब मणि उसके पास न निकला तो उन्होंने बलराम जी से कहा कि "भैया, इसके पास तो मणि नहीं है।" बलराम जी को इससे क्रोध आया। उन्होंने समझा श्रीकृष्ण बहाना कर रहा है। इसीसे नाराज़ होकर वे श्रीकृष्ण को छोड़कर विदर्भ देश को चले गये।

जब यह बात फैली कि श्रीकृष्ण ने लोभ से अपने भाई को भी अलग कर दिया है तो उनकी बड़ी निन्दा होने लगी। उनके लिए चारों ओर अनेक प्रकार की बातें होने लगीं। इससे श्रीकृष्ण बहुत दुःखी हुए। वे सदैव चिन्तित रहने लगे।

एक बार नारद जी आये तो श्रीकृष्ण ने उनसे यह बात कही। नारद जी बोले कि आपने भादों की शुक्ल चतुर्थी को चन्द्रमा देखा है, इसीसे यह कलंक आप पर लगा है।

श्रीकृष्ण बोले—चन्द्रमा को देखने से मनुष्य को कलंक क्यों लग जाता है ?

नारद जी ने कहा—एक बार ब्रह्मा जी ने यह व्रत किया था। प्रसन्न होकर गणेश जी उन्हें इच्छित वर देकर लौटने लगे। उनके विकट रूप को देखकर

चन्द्रमा को हँसी आ गयी। चन्द्रमा को हँसते देख गणेश जी नाराज़ हुए और उन्हें शाप दिया कि आज से तुम्हारा मुँह कोई न देखेगा।

गणेश जी चले गये और चन्द्रमा शापवश जाकर छिप गया। चन्द्रमा के विना लोगों को वड़ा कष्ट हुआ। ब्रह्मा जी की आज्ञा से लोगों ने गणेश व्रत किया। गणेश जी ने प्रसन्न होकर चन्द्रमा पर से शाप का प्रभाव दूर किया, और कहा कि वर्ष में केवल एक दिन भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को जो चन्द्रमा को देखेगा उसे कलंक लगेगा। यदि उस दिन चन्द्रमा को देख भी ले तो मेरा व्रत करने पर उसका कलंक दूर हो जायगा।

हे श्रीकृष्ण जी! उसी दिन के चन्द्रमा के दर्शन से आप पर यह कलंक लगा है। आप गणेश चतुर्थी का व्रत कीजिए। निःसन्देह आपका यह कलंक दूर हो जायगा।

नारद जी की सलाह से श्रीकृष्ण जी ने गणेश चतुर्थी का यह व्रत विधिपूर्वक किया और वे कलंक से मुक्त हुए।

करवा-चौथ

यह व्रत स्त्रियों का है। कातिक के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को किया जाता है। इस दिन स्नानादि से शुद्ध होकर स्त्रियों को "पुत्र-पौत्र-धन-सौभाग्य को अचल रखने के लिए यह व्रत करती हूँ" ऐसा संकल्प करके व्रत प्रारम्भ करना चाहिए।

पहले चन्द्रमा की मूर्ति बनानी चाहिए और उसके नीचे शिव, कार्तिकेय और पार्वती की। षोड़शोपचार से इनकी पूजा करके ताँबा अथवा मिट्टी के दस कुल्हियों में पुआ भरकर ब्राह्मणों को दे देना चाहिए। फिर नैवेद्य से भोग लगाना चाहिए। चन्द्रोदय होने पर अर्घ देकर निम्नलिखित कथा सुननी चाहिए।

एक बार अर्जुन किसी पर्वत पर तपस्या करने चले गये थे। उस समय पांडवों पर बड़ी-बड़ी मुसीबतें थीं। द्रौपदी को अर्जुन के न रहने से बड़ी चिन्ता थी। एक-बार श्रीकृष्ण जी को बुलाकर उन्होंने पूछा कि हे भगवन्,

इन कष्टों के निवारण का कोई उपाय बतलाइये। श्रीकृष्ण जी ने द्रौपदी को यही करवाचतुर्थी का व्रत बतलाया। कहा—हे द्रौपदी, पुराने समय में एक अत्यन्त विद्वान्, गुणवान् और कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहता था। समय पाकर उसके यहाँ चार पुत्र और एक सर्वगुण सम्पन्ना कन्या उत्पन्न हुई। कन्या के बड़ी होने पर ब्राह्मण ने एक योग्यवर से उसका विवाह कर दिया। विवाह होने पर एक दिन इस कन्या ने विधिपूर्वक करवा चतुर्थी का व्रत किया, किन्तु चन्द्रोदय होने के पहले ही इसे भूख लग गयी और अर्घ्य देकर उसने खा लिया। कुछ दिनों के बाद वह विधवा हो गयी। इससे उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने अन्न-जल त्याग कर दिया। एक वर्ष बीत गये। उसी समय एक बार और देवपत्नियों के साथ इन्द्राणी भी भूतल पर भ्रमण करने आयीं। यह समय अनुकूल जानकर उस ब्राह्मण-कन्या ने अपने पति की मृत्यु का कारण इन्द्राणी से पूछा। उन्होंने कहा कि—करवा चौथ के व्रत में चन्द्रोदय के पहले ही भोजन कर लेने के कारण तुम्हें यह दुःख भोगना पड़ा है।

ब्राह्मण कन्या ने पूछा—हे माता, इस दुःख के निवारण का उपाय क्या है? आप दया करके मुझे बताइये।

इन्द्राणी बोलीं—यदि तुम फिर से विधिपूर्वक करवा चौथ का व्रत करो तो निश्चय ही तुम्हारे पति फिर से जी उठेंगे।

इन्द्राणी की बात सुनकर उस ब्राह्मण कन्या ने विधि-पूर्वक करवा चौथ का व्रत किया और अपने मृत पति को पुनः प्राप्त किया।

श्रीकृष्ण जी ने कहा कि हे द्रौपदी, तुम भी यदि इस व्रत को करोगी तो तुम्हारे सब विघ्न दूर होंगे, सारे संकट टल जाँयगे। सौभाग्य, पुत्र-पौत्रादि और धन्यधान्य की इच्छा रखनेवाली प्रत्येक स्त्री को यह व्रत करना चाहिये।

इनके अतिरिक्त भादो कृष्ण चतुर्थी को बहुला चतुर्थी का व्रत किया जाता है। इस व्रत को कुमारी कन्याएँ करती हैं। इस व्रत को करने से मनवांछित पति मिलता है। दिनभर उपवास करके सन्ध्या के समय सूर्यास्त से पहले किसी नदी या तालाब में स्नान करके गणेश, शिव और पार्वती का पूजन करे। ब्राह्मणों को दक्षिणा दें। जौ की सत्तु का पारण किया जाता है।

ऋषि-पञ्चमी

भादों के शुक्ल पत्त की पञ्चमी को ऋषि-पंचमी का व्रत किया जाता है। इसे स्त्री-पुरुष दोनों ही कर सकते हैं। जाने अथवा अनजाने किये हुए पापों के प्रायश्चित्त की कामना से यह व्रत किया जाता है।

व्रत आरम्भ करने के पहिले समीप की किसी नदी अथवा तालाव में जाकर स्नान करना चाहिये। स्नानादि से शुद्ध हो कर घर आकर वेदी बनानी चाहिये और उसे गोबर से लीप कर सर्वतोभद्र मण्डल बनाना और ताँबे अथवा मिट्टी का घड़ा वहाँ रखना चाहिये। फिर सोने की अरुन्धती तथा सप्तर्षियों की मूर्ति बना कर विधिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक ऋषि के लिये अलग अलग वेद मंत्र हैं। उन मंत्रों से ऋषियों की पूजा करके ब्राह्मणों को वायन और आचार्य को पूजा की सामग्री दे देनी चाहिये।

पूजा के अनन्तर निम्न लिखित श्लोक से सप्तर्षियों से क्षमा प्रार्थना करनी चाहिये और कथा सुनते-सुनते रात बितानी चाहिए और प्रातःकाल अग्निकी प्रतिष्ठा करके व्रत समाप्त करना चाहिए। क्षमा प्रार्थना के लिये मंत्र—

न्यूनातिरिक्त कर्माणि मया यानि कृतानि च।
क्षमध्वं तानि सर्वाणि यूयं सर्वे तपोधनाः॥

इस व्रत के संबन्ध में कथाएँ अनेक प्रचलित हैं। हम यहाँ भविष्योत्तर पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण की दो कथाएँ दे रहे हैं।

भविष्योत्तर पुराण में लिखा है कि युधिष्ठिर के पूछने पर श्री कृष्ण ने इस व्रत का माहात्म्य बतलाते हुए एक कथा कही थी—हे राजन्! सतयुग में महाप्रतापी और धर्मात्मा श्येनजित् नाम का एक राजा राज्य करता था। उसके राज्य में सुमित्र नामका एक ब्राह्मण जयश्री नाम की अपनी स्त्री के साथ रहता था। एक बार रजस्वला होने पर भी अज्ञान के कारण जयश्री घर के सब काम करती रही और पति तथा ब्राह्मणों का स्पर्श करती रही। कुछ समय के बाद उन दोनों की मृत्यु हो गयी। रजस्वला होने पर भी गृहकार्य करने के कारण जयश्री को कुतिया होना पड़ा और रजस्वला स्त्री का स्पर्श करने के कारण सुमित्र को बैल। बैल

और कुतिया का जन्म पा कर दोनों अपने पुत्र सुमति के घर में ही आ रहे।

सुमति ने एकबार श्राद्ध किया। सुमति की स्त्री ने ब्राह्मणों के लिये जो खीर बनायी थी, उसे एक साँपने जूठा कर दिया। कुतिया ने साँप को खीर जूठा करते देखा था। खीर खानेवाले ब्राह्मण मर न जाँय, यह सोच कर उस कुतिया ने स्वयं खीर को जूठा कर दिया। कुतिया को खीर खाते देखकर सुमति की स्त्री को बहुत क्रोध आया और उसने कुतिया को बहुत मारा। उस दिन इसी क्रोध से कुतिया को खाना भी न मिला और उसे भूखीही रह जाना पड़ा।

आधीरात को कुतिया ने बैल के पास जाकर दिन का सारा वृत्तान्त कहा। कुतिया की बात सुनकर बैल बहुत दुखी हुआ और उसने कहा कि सुमति ने आज मुझे चरने भी नहीं दिया और काम भी बहुत लिया है, इससे मुझे भी बड़ा कष्ट हो रहा है।

सुमति पशुओंकी बोली समझता था। जब उसे मालूम हुआ कि ये दोनों उसके माता-पिता हैं, तब उसे बड़ा दुख हुआ और उसने दोनों को भर पेट भोजन कराया तथा ऋषियोंसे जाकर माता पिता की इस दशा का कारणपूछा।

ऋषियों ने पूर्व जन्मका सारा वृत्तान्त उसे बताया और कहा कि यदि तुम श्रद्धापूर्वक ऋषिपञ्चमी का व्रत करो तो तुम्हारे माता पिता की सद्गति हो सकती है।

ऋषियों की आज्ञा के अनुसार सुमतिने यह व्रत किया और उसके माता-पिता की सद्गति हुई।

इसी तरह की एक कथा ब्रह्माण्ड पुराण में भी है। प्राचीन समय में सिताश्व नामके एक राजा थे। उन्होंने ब्रह्मा जी से एकबार पूछा कि हे पितामह! सब व्रतोंमें श्रेष्ठ और तत्काल फल देनेवाला कौन व्रत है, आप मुझसे कहें।

ब्रह्मा ने कहा—हे राजन्! ऋषि पञ्चमी का व्रत सब व्रतों में श्रेष्ठ और सब पापों का नाश करनेवाला है। विदर्भ देश में एक सात्विक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी बड़ी पतिव्रता और सुशीला थी। उसके एक पुत्र और एक कन्या सन्तान थी। अवस्था होने पर ब्राह्मण ने समान कुल-शील वाले वर के साथ कन्या का विवाह कर दिया, पर कुछ ही दिनों के बाद वह विधवा हो गयी। उसके वैधव्य से उसके माता पिता को बड़ा दुख हुआ और वे गंगा तट पर झोपड़ी बना कर वहीं रहने लगे। एक दिन सहसा उस कन्या के शरीर में कीड़े पड़ गये। उसने माता से अपना दुख निवेदन किया। माता ने जाकर पतिसे सारी बातें कहीं। पूछा—

हे देव! मेरी परमा साध्वी कन्या की यह गति क्यों हुई?

ब्राह्मण ने ध्यान करके सब वृत्तान्त जाना। उसने कहा हे ब्राह्मणी! पूर्व जन्म में इस कन्या ने रजस्वला होते हुए भी घर के वर्तनों का स्पर्श किया और इस जन्म में और लोगों को ऋषि पञ्चमी का व्रत करते देख कर भी स्वयं नहीं किया, इसीसे इसकी यह दशा हुई है। यदि यह शुद्ध मन से अब भी इस व्रत को करेगी तो इसका दुख छूटेगा और अगले जन्म में यह अचल सौभाग्य पा सकेगी।

पिता की आज्ञा से कन्या ने विधिपूर्वक ऋषिपञ्चमी का व्रत किया और वह सारे कष्टों से मुक्त हो गयी। अगले जन्म में उसने अचल सौभाग्य और धन-धान्य तथा पुत्र प्राप्त किया और अक्षय सुख भोगा।

अचला-सप्तमी

बहुत से व्रत और उत्सव ऐसे हैं जो आवश्यक होने पर भी प्रचलित नहीं हैं और बहुत से लोग जिनके बारेमें कुछ विशेष जानते तक नहीं हैं। किसी भी बात को भूल जाने के दो विशेष कारण हो सकते हैं। एक तो लोगों को उसकी उपयोगिता न मालूम पड़े और दूसरे लोग उसकी उपयोगिता भूल जाँय। दोनों ही दशाओं में मनुष्य किसी बात को भुला सकता है। व्रतों के सम्बन्ध में भी यही बात है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि लोगों की दृष्टि में व्रत महत्व पूर्ण नहीं जँचे, हाँ, उनकी महत्ता को लोग भूलने जरूर लगे हैं। यही कारण है कि हमारे अनेक व्रतों और उत्सवों की चलन कम पड़ गयी है और आश्चर्य नहीं है कि कुछ दिनों में उनका अस्तित्व भी न रह जाय।

प्रत्येक व्रत और उत्सव किसी न किसी घटना के स्मारक हैं। उनकी महत्ता और उपयोगिता के लिये यही

कारण कुछ कम नहीं है। किन्तु दुख है कि हम लोग इस का अनुभव नहीं करते और अपने त्योहारों को जान बूझ कर भूलने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अचला सप्तकी का व्रत भी एक भुलाया हुआ त्योहार है। इसकी चलन कम है। माघ शुक्ल सप्तमी को यह व्रत किया जाता है। इसे स्त्रियाँ करती हैं और सूर्य के उद्देश्य से यह किया जाता है।

माघ शुक्ल षष्ठी के दिन केवल एकबार भोजन करके विधिपूर्वक सूर्य भगवान् का पूजन करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल किसी नदी या तालाब पर जाकर दीपदान करना और माथे पर दीपक रखकर सूर्य देव की प्रार्थना करनी चाहिये। यह सब करने के बाद स्नान करना और सूर्य की प्रतिमा बना कर उसके मध्य में शिव-पार्वती की मूर्ति की स्थापना करनी चाहिये। विधिपूर्वक इनकी पूजा करने के पश्चात् ताँबे के बर्तन में चावल आदि अन्नों का दान करना चाहिये। पुनः सूर्य का विसर्जन करना और बाद में भोजन करना चाहिये।

इसके सम्बन्ध की भी एक कथा कही जाती है। पुराने जमाने में इन्दुमती नामकी एक वेश्या रहती थी। एकबार उसने वशिष्ठ जी के पास जाकर कहा—हे भगवन्, आज

तक मैं कोई उत्तम काम नहीं कर सकी हूँ, इससे मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। आप कृपा कर मेरे उद्धार का उपाय बताइये।

दयालु वशिष्ठ जी ने वेश्या की कातर वाणी सुन कर कहा कि मुक्ति और सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए तुम अचला सप्तमी का व्रत करो। इस व्रत से बढ़कर अधिक फलदायक दूसरा कोई व्रत नही है। तुम माघ शुक्ल सप्तमी को यह व्रत करो। तुम्हारा कल्याण होगा।

इन्दुमती ने वशिष्ठ जी की आज्ञा से विधिपूर्वक यह व्रत किया और यह शरीर छोड़ कर वह स्वर्ग में गयी। उसकी सद्गति हो गयी। स्वर्ग की अप्सराओं में उसे श्रेष्ठ स्थान मिला।

भैरव–अष्टमी

अचला सप्तमी की भाँति ही भैरव अष्टमी का भी हमारे यहाँ बहुत प्रचार नहीं है। अगहन महीने के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को भैरव अष्टमी व्रत होता है। इसदिन काल भैरव की पूजा करके उनके लिए व्रत और रात्रि जागरण किया जाता है। इस व्रत को करनेवाले सब पापों से मुक्त होते हैं, दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं। कुछ लोगों का मत है कि इस दिन गंगा स्नान और पितरों का तर्पण-श्राद्ध करके जो लोग काल भैरव की पूजा करते हैं, उनके साल भर के विघ्न टल जाते हैं और उनका आयुष्य बढ़ता है।

जो कुछ भी हो, काल, जीवन के देवता हैं और उन्हें किसी न किसी रूप में स्मरण रखना, आवश्यक ही है। कम से कम इस दृष्टि से भी इस व्रत की उपयोगिता सिद्ध होती है और इसको जीवित रखने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

जन्माष्टमी व्रत

यह व्रत बड़ा प्रसिद्ध है और इसे प्रायः सभी लोग जानते हैं। इस व्रत के प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण होने का कारण भी है। इस दिन भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। दुष्टों का दमन और संसार के साधुओं का परित्राण करने के लिए स्वयं भगवान ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया था। इनके पहले भी कितने ही अवतार पृथ्वी पर हो चुके थे। वे भगवान के आंशिक अवतार थे किन्तु "कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।"—कृष्ण जी तो स्वयं भगवान ही थे। इस व्रत ने इन्हीं कृष्ण भगवान के जन्म के कारण इतना महत्व प्राप्त किया है।

कृष्णाष्टमी का व्रत रात का होता है। रात में अष्टमी पड़ती हो और उसमें रोहिणी नक्षत्र भी हो तो इसका ठीक योग होता है। यदि अष्टमी हो और रोहिणी न पड़े तो केवल व्रत ही होगा, जयन्ती नहीं। कुछ लोगों का यह भी

मत है कि अष्टमी में रोहिणी नक्षत्र पड़ जाने से ही व्रत और जयन्ती दोनों हो सकती है। किन्तु,यह मत सर्वमान्य नहीं है।

भादों महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधीरात को, रोहिणी नक्षत्र में भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ था। अतः, प्रातःकाल नित्यकृत्यों से निवृत्त और स्नानादि से पवित्र होकर देशकाल आदि का नाम लेकर "भगवान् कृष्ण की प्रसन्नता के हेतु, अपने सारे पापों के नाश और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्ति की कामना से यह व्रत करता हूँ" ऐसा संकल्प करके व्रत प्रारंभ करना चाहिए।

गोबर से लिपे हुए शुद्ध स्थान पर, पाँच रंगों के कपड़े, फूल, फल और माला से शोभित सर्वतोभद्र की वेदी पर जौ और तिल से भरा हुआ कलश स्थापित करे और वहाँ चाँदी की खटिया पर सोयी हुई देवकी की गोद में लेटकर दूध पीते हुए श्रीकृष्ण की मूर्ति बनावे। फल, फूल और धूप, दीप, नैवेद्य से विधिपूर्वक उनकी पूजा करे और निम्न-लिखित श्लोकों से ध्यान—

कृष्णं चतुर्भुजं देवं शंखचक्रगदाधरम्।
पीतांबरयुगोपेतं लक्ष्मीयुक्तं विभूषितम्।
लसत्कौस्तुभशोभाढ्यं मेघश्यामं सुलोचनम्।
ध्यायामि पुण्डरीकाक्षं जगदानन्दकारकम्।

ध्यान करके भिन्न भिन्न मंत्रों से अंग पूजा करनी चाहिए और इस प्रकार पूजा समाप्त करके स्तोत्र पाठ करना चाहिए।

चन्द्रोदय होने पर अर्घ्य देना चाहिए—

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च।
देवानाञ्च हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥
कौरवानां विनाशाय पाण्डवानां हिताय च॥
गृहाणार्घ्यं मयादत्तं देवकी सहितोदरे॥

इस प्रकार पूजा के सब विधानों से निवृत्त होकर रात्रि जागरण करना चाहिए और प्रातःकाल स्नान करके अग्नि की पूजा और ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

पुस्तकों में पूजा और उत्सव की विधि बहुत विस्तार से और अधिक कही गयी है। हमने केवल आवश्यक अंश यहाँ लेकर संक्षेप से पूजा-विधि लिख दी है। आजकल के जमाने में उतना सब करने की न किसी को फ़ुर्सत है और न आवश्यकता। हृदय में श्रद्धा और भक्ति होनी चाहिए, आडम्बर की जरूरत नहीं। आडम्बर से न भगवान प्रसन्न होते हैं, न मनुष्यों का कल्याण ही होता है। जैसा हम आगे लिख आये हैं, व्रत और उत्सव अनेक पुण्य-घटनाओं की स्मृतियाँ हैं। उन्हें जीवित रखने के लिए ही, उनकी

याद बनाए रखने की इच्छा से ही, ये व्रत और उत्सव मनाए जाते हैं। अतः इनमें ठाट-बाट और धूम-धाम की अपेक्षा सच्ची भावनाएँ और सदिच्छाएँ ही अधिक आवश्यक हैं।

कृष्णावतार की कथा इतनी मशहूर है कि उसे बार बार दोहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हमारे देश का बच्चा बच्चा वह कथा जानता है; लेकिन, जब लिखने बैठे हैं, तो कुछ न कुछ उसके लिए भी लिखही देना चाहिए।

उन दिनों पाप के भार से पृथ्वी झुक गयी थी। संसार त्राहि त्राहि कर रहा था। कंस और जरासन्ध के समान क्रूर, पापी और अत्याचारी राजा पृथ्वी पर राज्य करते थे। भगवान कृष्ण का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था।

देवकी कंस की बहन थी। कंस ने यदुवंश के अधिपति वसुदेव से अपनी बहन का व्याह किया और जब वह उन दोनों को पहुँचाने के लिए रथ पर चढ़कर नगर से बाहर जा रहा था, आकाश वाणी हुई कि हे कंस! इतनी खुशी से तू जिसे विदा करने जा रहा है, उसीके आठवें गर्भ से जन्म धारण करने वाला तुझे मारेगा।

आकाशवाणी सुनकर कंस को बड़ी चिन्ता हुई। उसने देवकी के सहित वसुदेव को कारागार में बन्द कर दिया। उन दोनों के कष्ट के दिन वहीं बीतने लगे।

समय पाकर देवकी के गर्भ से एक बालक उत्पन्न हुआ, उसे कंस ने उसी समय जमीन पर पटक कर मार डाला। उसने निश्चय किया था कि इसी प्रकार उसके सारे बाल बच्चों को वह मार डालेगा; फिर उसे मारनेवाला कौन रह जायगा।

क्रम से देवकी के गर्भ से सात सन्तान हुईं और सातों को कंस ने मार डाला। वसुदेव और देवकी इससे बहुत चिन्तित और दुखी रहने लगे।

देवकी ने आठवीं बार गर्भ धारण किया। समय पर गर्भ पूरा हुआ। भादों के कृष्ण पक्ष की अँधेरी आधी रात थी, पानी बरस रहा था, बिजली चमक रही थी। घोर कारागार में भगवान कृष्ण ने इसी समय अवतार लिया। दिव्य ज्योति से कारागार चमक उठा। रक्षक सो गये। लोहे की सुदृढ़ जंजीरें आपही आप खुल गयीं। वसुदेव ने आकाश वाणी सुनी—"बालक को लेकर गोकुल में नन्द के घर रख आओ और उनकी कन्या जो आज ही पैदा हुई है उठा लाओ। रास्ता खुला है, रक्षक घोर निद्रा में सो रहे हैं।"

उस तीर-सी लगने वाली हवा और पानी में तत्काल के पैदा हुए बालक को लेकर वसुदेव गोकुल को ओर चल पड़े। रास्ते में जमुना पड़ती थी। उन्होंने जमुना पार किया। गोकुल में नन्द के घर पहुँचे। कृष्ण को यशोदा की गोद में सुलाकर उनकी नवजात बालिका लेकर लौट आये। किसीको कानोंकान खबर तक न हुई।

सवेरे कंसको बच्चा पैदा होने की खबर मिली। उसने जाकर बालिकाको पृथ्वी पर पटक दिया। बालिका पृथ्वी पर गिरनेके पहले ही आकाश में उड़ गयी। वह महामायाका अवतार थी। आकाशसे उसने कहा—हे कंस ! तू मुझे मार नहीं सकता; पर, तेरा मारनेवाला तो पृथ्वी पर जन्म धारण कर चुका है।

कृष्ण गोकुल में बढ़े। नन्द के घर खाया-खेला। बड़े हुए। अनेक लीलाएँ कीं। अनेक राक्षसों और दुष्टों का संहार किया। कंस को भी मारा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन के सारथी बने। गीता का उपदेश किया। आगे इतिहास साक्षी है।

मथुरा और वृन्दावन कृष्ण जी की लीला-भूमि है। आज भी वहाँ के एक-एक रजकण में एक अनिर्वचनीय पवित्रता, अविस्मरणीय सुख और अचल भक्ति भरी हुई है।

आज भी जन्माष्टमी के दिन वहाँ जाकर और श्रीकृष्ण भगवान की लीलाभूमि के दर्शन करके लोग धन्य-धन्य हो जाते हैं। जो ऐसे महान् पुरुष का जन्म-दिन है, जो ऐसी महत्वपूर्ण घटना की स्मृति है, उसे रक्षित रखने के लिए हमें अवश्य ही बलवान होना चाहिये और पूर्ण श्रद्धा-भक्ति के साथ प्रतिवर्ष कृष्णाष्टमी का यह व्रत करना चाहिए।

एक बात और। कृष्णाष्टमी का व्रत निराहार रहकर किया जाता है। किन्तु, आजकल जन्म होने के बाद लोग प्रायः फलाहार कर लेते हैं। यह उचित नहीं है। जिन कष्टों और उत्पीड़नों के बीच में भगवान श्रीकृष्ण ने जन्म धारण किया था, उन्हें याद रखने के लिए भी, कम से कम, एक दिन हमें पूर्ण उपवास करना चाहिये। उपवास करने से लाभ ही लाभ है, यह न भूलना चाहिये।

रामनवमी

रामनवमी रामचन्द्रजी की जन्म तिथि है। इस दिन श्रीरामचन्द्र जी ने पृथ्वी पर अवतार लिया था। कृष्ण जी के समान ही इन्होंने भी दुष्टों के दमन और साधुओं के परित्राण के लिए जन्म लिया था। अतः इस रामनवमी व्रत का भी बड़ा माहात्म्य है और यह बड़ा प्रसिद्ध त्यौहार है भी। भारतवर्ष में हर जगह इसकी चलन है और प्रायः सभी लोग इसके बारे में कुछ न कुछ जानते हैं।

चैत के शुक्ल पक्ष की नवमी को तीसरे पहर यदि पुनर्वसु नक्षत्र पड़े तो वह तिथि बड़े पुण्यवाली होती है। इस दिन इसी तिथि में श्रीरामचन्द्र ने जन्म धारण किया था। इस लिए आज के दिन प्रत्येक हिन्दू को उपवास करके उनके प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करनी चाहिए और उनके जन्म के उपलक्ष में उत्सव मनाना चाहिए।

रामनवमी के दिन दिनभर उपवास करना और रात्रि में जागना चाहिए। दूसरे दिन सवेरे स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान रामचन्द्र का विधिपूर्वक पूजन और शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। ब्राह्मण भोजन

के वाद, श्रद्धा और शक्ति से जो कुछ वन पड़े—अन्न, वस्त्र, तिल और द्रव्य आदि—सत्पात्र को दान करना चाहिए। रामनवमी का यह व्रत करनेवाला सुखी होता है और उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। रामनवमी के दिन भोजन करनेवाले व्रती की प्रशंसा नहीं की जा सकती।

रामनवमी के दिन रामचन्द्र की सोने की प्रतिमा दान करने का भी विधान है। जो लोग प्रतिमा दान करना चाहें उन्हें चाहिये कि वे किसी कर्मनिष्ठ विद्वान् ब्राह्मण के पास जाकर प्रार्थना करें कि हे भगवन्! मैं प्रतिमा दान करना चाहता हूँ। आप मेरे पूज्य हैं, आचार्य हैं, अतः मैं रामचन्द्र जी की प्रतिमा आपही को दान करूँगा।"

पश्चात् ब्राह्मण को अपने यहाँ ले आवे और विधिपूर्वक उन्हें स्नान कराकर आप भी करे और उन्हें भोजन कराकर आपभी खाय। यह सब कार्य अष्टमी की सन्ध्या को होना चाहिए।

नवमी के दिन प्रातःकाल सर्वतोभद्र की वेदी पर रामचन्द्र की सोने की दो भुजाओं वाली मूर्ति वनाकर स्थापित करना और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके दिनभर उपवास और रात्रि-जागरण करना चाहिए। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर और स्नानादि से शुद्ध होकर प्रतिमा की पुनः पूजा

करना और घी तथा खीर की १०८ आहुतियों से हवन करना चाहिए।

हवन समाप्त करने के बाद उस प्रतिमा का दान करना और उसके साथ ही श्रद्धा और शक्ति के अनुसार दक्षिणा भी देनी चाहिए। फिर ब्राह्मण भोजन कराना और इस प्रकार व्रत समाप्त करके स्वयं भी भोजन करना चाहिए। इस व्रत से समस्त पापों का नाश होता है और मुक्ति मिलती है, ऐसा लिखा है।

भगवान् रामचन्द्र आदर्श पुरुष थे, मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उनके चरित्र अलौकिक थे। उनका आज्ञापालन, भ्रातृ-प्रेम, स्वार्थत्याग, वीरता, क्षमा, दया और दुष्टों का दमन आदि गुण प्रशंसनीय और अनुकरणीय थे। उनके चरित्र की एक एक बात में विशेषता है, और उनके जीवन की एक एक बात अनुकरणीय है, किन्तु, यहाँ हमें उनकी आलोचना नहीं करनी है।

रामायण की कथा भारतवर्ष का बच्चा बच्चा जानता है। आदिकवि वाल्मीकि और महात्मा तुलसीदास ने उस कथा को इतना जनप्रिय और सुलभ बना दिया है कि वह आज घर-घर में, प्रत्येक पढ़े-बेपढ़े मनुष्यों की जबान पर है। प्रसङ्ग वश, हम उसकी संक्षिप्त कथा यहाँ लिखते हैं।

रघुवंश में महाराज दशरथ एक प्रतापी राजा थे। उनके राज्य में सभी सुखी थे, सभी प्रसन्न, सभी स्वस्थ। उनके राज्य में न अतिवृष्टि होती थी, न अनावृष्टि। घरों में धन था, खेतों में धान, और मन में सन्तोष। सब लोग राजा दशरथ का जय जयकार करते थे।

दशरथ को कोई सन्तान न थी। धीरे धीरे वे वृद्ध हो चले और सन्तान के लिए चिन्तित रहने लगे। गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और अग्नि ने प्रसन्न होकर उन्हें चरु देकर उसे अपनी स्त्रियों को बाँट देने के लिए कहा।

दशरथ के तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। राजा ने तीनों रानियों को चरु समान भाग में बाँट दिया। चरु के प्रभाव से तीनों रानियों को गर्भ रहा और समय पर कौशल्या से रामचन्द्र, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयी से भरत उत्पन्न हुए। चारों ओर प्रसन्नता छा गयी। राजा की खुशी का क्या पूछना!

चारों राजकुमार बढ़ने लगे। दशरथ उनकी बाल-लीलाएँ देख देखकर प्रसन्न होते और अपने भाग्य को सराहते थे।

उन दिनों राक्षसों ने बड़ा उपद्रव कर रक्खा था। वे

ऋषियों की तपस्या में विघ्न डालते, उत्पात करते और उन्हें तरह तरह से सताया करते थे। इससे तपस्वी बड़े दुःखी थे। उन्हें जब मालूम हुआ कि महाराज दशरथ के यहाँ एक अतुल पराक्रमी बालक ने जन्म लिया है तो उन्होंने विश्वामित्र को दशरथ के यहाँ भेजा। विश्वामित्र आकर राम और लक्ष्मण को ले गये। दोनों बालकों को विदा करते समय दशरथ का कलेजा निकल गया; किन्तु धर्म और प्रजा की रक्षा के लिए उस समय के राजा अपना सबकुछ दे सकते थे। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिए महर्षि को अपने दोनों पुत्र सौंप दिये।

रामचन्द्र वन में गये। रास्ते में उन्होंने ताड़का नाम-की एक राक्षसी का वध किया। तपोवन में खर और दूषण से उनका युद्ध हुआ और उन्होंने राक्षसों को मार डाला। उन्हीं दिनों मिथिला के राजा जनक के यहाँ धनुषयज्ञ हो रहा था। विश्वामित्र अपने साथ राम लक्ष्मण को भी वहाँ ले गये। रास्ते में अहल्या नाम की एक पतिता नारी का—जो पति के शाप से पत्थर हो गयी थी—रामचन्द्र ने उद्धार किया।

रामचन्द्र जनकपुर पहुँचे। वहाँ बड़ा समारोह था। देश देश के राजा इकट्ठा हुए थे। जनक के पास शिवजी

का एक धनुष था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ावेगा, उसे वे अपनी बेटी सीता ब्याह देंगे। रामचन्द्र ने धनुष तोड़ डाला और सीता को ब्याह कर अयोध्या लौट आये।

कुछ दिन बीतने पर दशरथ ने रामचन्द्र को राज्य देने का निश्चय किया। कैकेयी को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने राजा से कहकर १४ वर्ष के लिए रामचन्द्र को वन भेज दिया और अपने बेटे भरत को राजा बनाने का हठ किया।

पिता की बात मान कर रामचन्द्र वन चले गये। उनके साथ उनकी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण भी वन गये। राजा दशरथ ने इसी शोक में प्राण त्याग किया। भरत और शत्रुघ्न उस समय ननिहाल में थे। लौटने पर उन्हें सारी बातें मालूम हुईं। भरत ने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया। वे रामचन्द्र की खड़ाऊँ को उनका प्रतिनिधि मान कर—स्वयं अलग होकर—तपस्वी वेष में दिन बिताने लगे।

रामचन्द्र अनेक जंगलों में घूमते रहे। अनेक राक्षसों को उन्होंने युद्ध में पराजित किया और मारा। लक्ष्मण ने शूर्पनखा नामकी रावण की बहिन की नाक काट ली।

इसी गुस्से में रावण, राम और लक्ष्मण की अनुपस्थित में, सीता को हर ले गया।

राम ने वन्दरों और भालुओं की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई कर दी और परिवार के साथ रावण का नाश करके सीता का उद्धार किया। विभीषण नाम का रावण का एक भाई बड़ा पुण्यात्मा था। वह पहले ही रामचन्द्र की शरण में आ गया था। उसे राज्य सौंप और सीता को लेकर रामचन्द्र अयोध्या लौट गये। उस समय तक चौदह वर्ष पूरे हो गये थे।

भरत ने रामचन्द्र का राज्य उन्हें सौंप दिया। फिर रामचन्द्र ने बहुत दिनों तक सुखपूर्वक राज्य किया और प्रजा को हर तरह से सन्तुष्ट रखा।

यही रामायण की और रामचन्द्र की संक्षिप्त कथा है। रामचन्द्र-जैसे आदर्श पुरुष की स्मृति को सदैव ताजी रखने के लिए हमें रामनवमी का यह व्रत प्रतिवर्ष बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ करना चाहिए, उनके प्रति अपना अनुराग अटल बनाना और उनके चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए।

गङ्गा दशहरा

जेठ महीने के शुक्ल पक्ष की दशमी को गंगा दसहरा का उत्सव होता है। इस दिन गंगा जी भूतल पर अवतीर्ण हुई थीं। गंगा हमारे यहाँ की पूज्य नदी हैं और सारे पापों को नष्ट करनेवाली हैं। इस कारण इस दिन का बड़ा महत्व है और इस दिन विशेप उत्सव किया जाता है।

गंगा दसहरा के दिन गंगा में अथवा और किसी नदी में स्नान करना और तिलोदक देना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सारे पापों से मुक्त होता और वैकुण्ठ प्राप्त करता है।

दसहरा के दिन विशेपरूप से गंगा जी की पूजा करनी चाहिए और गंगा-स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। इस स्तोत्र का पाठ करने से सारे पाप नष्ट होते और मनष्कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इस स्तोत्र को सुनने या पाठ करने से मनुष्य अनेक रोगों से मुक्ति और स्वर्ग में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है।

गंगा के भूतल पर अवतीर्ण होने की एक अत्यन्त मनोरंजक कथा वाल्मीकि रामायण में लिखी है। संक्षेप में

हम उसीको यहाँ लिखते हैं; क्योंकि यह जानना बहुत जरूरी है कि गंगा कब और क्यों भूतल पर अवतीर्ण हुईं।

प्राचीन समय में सगर नाम के राजा अयोध्या में राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ थीं। पहली रानी के असमंजस नाम का एक पुत्र था और दूसरी के साठ हजार पुत्र थे। असमंजस के भी एक पुत्र था, अंशुमान। वह बड़ा पराक्रमी और शीलवान था। सभी उसपर प्रसन्न रहते थे।

एक समय महाराज सगर ने राजसूय यज्ञ प्रारंभ किया। यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया गया और असमंजस उसकी रक्षा के लिए चला। कुछ दिनों तक इधर उधर घूम कर और देश विदेश के राजाओं को जीत कर, घोड़ा जब कपिल मुनि के आश्रम के पास आया तो इन्द्र ने उसे चुरा लिया और मुनि के आश्रम में वे उसे बाँध आये। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब असमंजस कपिल मुनि के आश्रम में आये और घोड़े को वहाँ बँधा हुआ देखा तो वे बहुत क्रोधित हुए और मुनि को उन्होंने कठोर वचन कहे। उनकी क्रोध भरी वाणी सुनकर कपिल को भी क्रोध हो आया और तपस्या के प्रभाव से उन्होंने उसी समय असमंजस को भस्म कर डाला।

जब, बहुत दिन बीत गये और असमंजस न आये, तो सगर ने साठ हजार अपने पुत्रों को उन्हें ढूँढ़नेके लिए भेजा।

ये साठ हजार सगर के पुत्र संसार भर में ढूँढ आये; पर, न घोड़े का पता लगा सके, न असमंजस का। अन्त में इन लोगों ने पृथ्वी खोदना आरंभ किया और कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ने अप्रसन्न होकर इन साठ हजार सगर के पुत्रों को भी अपनी क्रोधाग्नि में भस्म कर दिया।

फिर, अंशुमान निकले। अंशुमान जब कपिल के आश्रम में पहुँचे तो उन्हें गरुड़ मिले। बोले—कपिल मुनि ने क्रोध करके तुम्हारे साठ हजार चाचाओं को भस्म कर दिया है। इनकी मुक्ति चाहते हो तो गङ्गा को भूतल पर लाने की चेष्टा करो। बिना गङ्गाजल के इनकी मुक्ति नहीं हो सकती।

गरुड़ की बात सुनकर अंशुमान कपिल मुनि के समीप गये और अपनी मधुर वाणी तथा नम्र स्वभाव से उन्हें प्रसन्न किया। घोड़ा लेकर वे सगर के पास लौट गये और सब वृत्तान्त उनसे कहा।

घोड़ा के लौट आने पर विधिपूर्वक सगरने यज्ञ समाप्त किया और बहुत दिनों तक राज्य करके स्वर्ग सिधारे।

सगर के बाद अंशुमान अयोध्या की गद्दी पर बैठे। उनके पुत्र दिलीप भी बड़े प्रतापी हुए और उन्हें अच्छी

ख्याति मिली। कुछ दिनों बाद दिलीप को राज्य देकर अंशुमान हिमालय पर्वत चले गये और गङ्गा के निमित्त तपस्या करने लगे। बहुत दिनों की कठिन तपस्या के बाद भी वे गङ्गा को न प्राप्त कर सके और स्वर्गत हुए। दिलीप ने भी बहुत दिनों तक राज्य किया और अन्त में अपने पुत्र भगीरथ को राज्य देकर हिमालय पर गङ्गाको लाने के लिये तपस्या करने चले गये। उन्होंने भी बहुत तपस्या की, पर गङ्गा को न ला सके।

भगीरथ बड़े धर्मात्मा थे। पितरों की मुक्ति के लिये वे बहुत चिन्तित रहते थे और थोड़े ही दिनों के बाद मंत्रियों को राज्य सौंप कर वे हिमालय पर चले गये। वहाँ उन्होंने घोर तपस्या की। उनकी तपस्या से ब्रह्मा प्रसन्न हुए। वर माँगने को कहा। भागीरथ ने कहा—हे पितामह! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे साठ हजार पितरों की मुक्ति के लिये गङ्गा जी को भूतल पर भेजिये। बिना गङ्गाजल के उन का मोक्ष न होगा। ब्रह्मा ने कहा—हे राजा! मैं गङ्गाको- धरातल पर भेज तो दूँ, पर सिवा शंकर जी के गङ्गा के वेग को धारण करने शक्ति और किसीमें नहीं है। तुम उन्हें प्रसन्न करो। यदि वे गङ्गा जी को धारण करना स्वीकार करलें तो गङ्गाजी को मैं भेज दूँ। नहीं तो पृथ्वी उनके वेगको सँभाल

न सकेगी और वे यहाँ से उतर कर सीधे पाताल में प्रवेश कर जायँगी।

ब्रह्मा की आज्ञा से भगीरथ ने फिर कठिन तपस्या की। महादेव प्रसन्न हुए और उन्होंने गङ्गा को अपनी जटाओं में धारण करना स्वीकार किया। गङ्गा स्वर्ग लोक से भूतल पर उतरीं और महादेव ने उन्हें अपनी जटा में बाँध लिया; फिर, उनकी जटा से निकल कर गङ्गाकी एक धारा भगीरथ के पीछे पीछे चली और संसार के अनेक पापन्तापों का नाश करती हुई आगे बढ़ी। ऊँची नीची जमीन पर से बहती हुई गङ्गा की वह शोभा अपूर्व थी। उसे देखने के लिये स्वर्ग से देवता अपने विमानों पर उतर आये थे।

रास्ते में एक जगह जन्हु तपस्या कर रहे थे। जब गङ्गा जी वहाँ पहुँचीं, तो उन्होंने गङ्गाजी को पी लिया। ऋषि-मुनियों तथा देवताओं ने यह देखकर जन्हु की बड़ी तारीफ की और कहा कि हे भगवान! गङ्गा आज से आपकी कन्या कही जायगी। संसार के कल्याण के लिये आप उन्हें छोड़ दें।

देवताओं की प्रार्थना से अपने कान के रास्ते जन्हु ने गङ्गाजी को निकाल दिया। तबसे गङ्गा जान्हवी कहलायीं।

गङ्गा ने सगर के पुत्रों को मुक्ति दी। भगीरथ गङ्गा

को स्वर्ग से लाये थे, इस लिये गंगा का एक नाम भागीरथी भी पड़ा, जिससे गंगा जी के साथ ही उनकी यादगार सदा बनी रहेगी।

अपने पितरों के तर जाने पर भगीरथ बड़े प्रसन्न हुए और सुखपूर्वक बहुत दिनों तक राज्य करते रहे।

भीमसेनी एकादशी

इसे निर्जला एकादशी भी कहते हैं। जेठ के शुक्ल पक्ष की एकादशी को यह व्रत किया जाता है। इस दिन निर्जल रहकर गुड़ और जल से भरा हुआ घड़ा ब्राह्मण को दान करने से विष्णु भगवान प्रसन्न होते हैं।

यद्यपि यह व्रत काफी प्रचलित है, पर पुस्तकोंमें इसका कुछ विशेष विवरण नहीं मिलता। विष्णु भगवान की प्रसन्नता के लिये यह व्रत किया जाता है। इससे मनुष्य सब पापों से रहित होता और सद्‌गति पाता है। व्रत का महत्त्व यों भी कुछ कम नहीं है। उपवास से लाभ ही लाभ है, हानि कुछ नहीं। इस दृष्टि से भी जो लोग व्रत उपवास करेंगे वे कुछ हानि में न रहेंगे।

आज संसार के वैज्ञानिक और चिकित्सक उपवास का महत्व मान रहे हैं। हमारे यहाँ इसका महत्व बहुत पहिलेही लोगों ने समझा था और उसी समय से इन व्रतोपवासों का प्रचलन हुआ था। हिन्दू जाति शुरूसे ही धर्म-प्रवण रही है, इसीसे स्वास्थ्य-और जीवन के सभी आवश्यक कार्यों को पुराने लोगों ने धर्म के अन्तर्गत कर दिया है। इससे उनका

यही अभिप्राय मालूम होता है कि धर्म का आवरण पड़ जाने से धर्मप्राण हिन्दू-जाति इन नियमों का पालन अधिक तत्परता से करेगी, इनकी उपेक्षा करने का साहस न करेगी। यह बात प्रायः ठीक भी है।

निर्जला एकादशी के बारे में भीमसेन के पूछने पर व्यास जी ने महाभारत में कहा है—जेठ महीने की शुक्ल एकादशी यदि वृष या मिथुन में पड़े तो वह तिथि बड़े पुण्यवाली होती है उस दिन यत्नपूर्वक उपवास करना और जल भी न पीना चाहिये। एकादशी के दिन सूर्योदयसे लेकर द्वादशी के दिन सूर्योदय तक जो लोग जल भी नहीं पीते उन्हें अनायास ही बारह द्वादशियों का पुण्य प्राप्त होता है।

द्वादशी के दिन प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान करना और ब्राह्मणों को विधिपूर्वक जल तथा सुवर्ण दान करना चाहिये फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं खाना चाहिए। इस प्रकार इस व्रत को करने वाला, सालभरके एकादशियों का फल पाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

चातुर्मास्य-व्रत

असाढ़ के शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर कातिक शुक्ल द्वादशी तक, वरसात के चार महीनों को चौमासा कहते हैं। चातुर्मास्य व्रत इसी समय किया जाता है।

असाढ़ शुक्ल एकादशी को विष्णु भगवान की मूर्ति को स्नान कराकर और पीताम्बर पहनाकर शुद्ध आसन पर वैठाना चाहिए; फिर, दूध-दही-घी और शहद आदि से स्नान कराकर धूप दीप दिखाकर पूजन करना चाहिए।

जो लोग चतुर्मास्य का यह व्रत नियम पूर्वक और श्रद्धा से करते हैं, मृत्यु के वाद उन्हें स्वर्ग में श्रेष्ठ स्थान मिलता है और जीवित रहकर वे सारे सुख पाते हैं।

अशौच और संक्रांतिहीन मास में चातुर्मास्य का व्रत न करना चाहिए। जो लोग इस वात का ख़याल किये बिना ही व्रत करते हैं, उन्हें व्रत करने का कोई फल नहीं मिलता।

चातुर्मास्य का व्रत करने वाले को विष्णु भगवान के मन्दिर को रोज साफ करना और लीप-पोत कर रँगना

चाहिए। कार्तिक शुक्ला द्वादशी को व्रत का उद्यापन करके जो लोग शक्ति के अनुसार ब्राह्मण भोजन कराते हैं, उन्हें जन्म जन्मान्तर में कोई पाप स्पर्श नहीं करता।

राजाओं को इन महीनों में सुवर्ण तथा पृथ्वी दान करना चाहिए। ऐसा करने वाले राजा इन्द्र के समान सुख और ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। कार्तिक मास में सोने की तुलसी और दूर्वा दान करने का भी महत्व लिखा है। इस महीने में नित्य पीपल की प्रदक्षिणा करके उसे नमस्कार करने और विष्णु के मन्दिर अथवा ब्राह्मण के घरमें दीपक जलाने का भी विधान है।

ब्राह्मणों को शास्त्र और गायत्री का प्रचार करना चाहिए। प्रातः काल सूर्य को अर्घ देना और उनके बीच में बसने-वाली ब्रह्म ज्योति को प्रणाम करना चाहिए।

व्रत की समाप्ति में सुवर्ण, लालवस्त्र, गाय और तिल-पात्रों का दान करना चाहिए, ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और देवताओं की प्रसन्नता के लिए अलग अलग दान करना चाहिए।

चातुर्मास्य का व्रत वर्षा ऋतु में होता है। इस व्रत के करने वाले स्वास्थ्य, ओज, देवताओं की प्रसन्नता, पुत्र-पौत्रादि तथा धन-धान्य प्राप्त करते हैं।

बरसात में स्वभाव से ही रोग अधिक होते हैं। यदि उन चार महीनों में विशेष संयम से रहा जाय, भोजन-पान में परहेज किया जाय तो यों भी लाभ ही होगा।

बरसात के मौसिम में अग्नि मन्द पड़ जाती है। इस ऋतु में हलका भोजन करना चाहिए। बीच बीच में उप-वास करते रहना चाहिए। नमक छोड़ देना चाहिए। यह सब स्वास्थ्य के लिए हितकारी होता है। हमारा ख्याल है कि प्राचीन काल में लोग इसी उद्देश्य से यह व्रत करते रहे होंगे।

भीष्म-पंचक

कार्तिक के शुक्ल पक्ष की एकादशी को भीष्म पंचक व्रत प्रारम्भ और पौर्णिमा को समाप्त होता है। इसी एकादशी को देवोत्थापिनी एकादशी (देवठन) भी होता है और वह व्रत भी लोग बड़े उत्साह से करते हैं।

भीष्म पंचक व्रत के संबन्ध में एक कथा है। भीष्म पितामह जिस समय शर-शय्या पर सो रहे थे, उसी समय भगवान कृष्ण के साथ पाँचों पाण्डव उनके पास गये और युधिष्ठिर ने उनसे उपदेश करने की प्रार्थना की। युधिष्ठिर के इच्छानुसार पितामह ने पाँच दिनों तक राजधर्म, वर्णधर्म और मोक्षधर्म आदि की बात युधिष्ठिर को सुनायी और उन्हें सन्तुष्ट किया। उनके उपदेश सुनकर श्रीकृष्ण जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि हे राजन्! आपने कार्तिक शुक्ल एकादशी से लेकर पौर्णिमा तक पाँच दिनों में जो धर्म वर्णन किया है, उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं इसकी स्मृति के लिए आपके नाम पर यह भीष्म पंचक व्रत स्थापित करता हूँ। जो लोग इस व्रत को करेंगे वे संसार के

अनेक कष्टों से मुक्त हो जायँगे और यहाँ का सारा सुख भोगते हुए मोक्ष प्राप्त करेंगे। उन्हें पुत्र और धन आदि की कमी न रह जायगी।

कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन स्नान से शुद्ध होकर तिथि आदि के साथ "अपने सारे पापों को नाश करते हुए धर्मार्थ काम मोक्ष आदि चारों सिद्धियों की प्राप्ति के द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए यह व्रत करता हूँ" ऐसा संकल्प करके व्रत आरंभ करना चाहिए।

नदी के तट पर अथवा घर के आँगन में चार दरवाजों-वाला एक मण्डप बनाना और उसे गोबर से लीप देना चाहिए। लिपे हुए स्थान में सर्वतोभद्र की वेदी बनाना और उसपर प्रस्थ और तिल भरकर घड़ा स्थापित करना चाहिए। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मंत्र से वासुदेव भगवान की पूजा करनी चाहिए। पाँच दिनों तक लगातार रात-दिन घी का दीपक जलाना चाहिए और मौन हो कर द्वादशाक्षर मंत्र का आठ सौ जप करना चाहिए। 'ॐ विष्णवे नमः स्वाहा' इस मंत्र से घी, तिल और जौ की एक सौ आठ आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए और स्तोत्र आदि का पाठ करते हुए रात दिन बिताना चाहिए। पाँचों दिन ऐसा ही होना चाहिए।

प्रति दिन की पूजा का विशेष विधान भी है। पहले दिन श्रीकृष्ण के पैरों की पूजा कमलों से करनी चाहिए, स्वयं* गोबर खाना चाहिए। दूसरे दिन श्रीकृष्ण के घुटनों की पूजा करनी और तीन पल गोमूत्र का पान करना चाहिए। तीसरे दिन नाभिका पूजन शृंगार द्रव्यों से करना और तीन पल दूध पीना चाहिए। चौथे दिन छोटे छोटे बेलपत्रों से कंधों की पूजा करनी और तीन पल दही खाना चाहिए। पूर्णिमा के दिन मालती से श्रीकृष्ण के सिर की पूजा करके एक पल घी खाना चाहिए। मूल मंत्रों अथवा पंचगव्य मंत्रों से पंचगव्य खाना चाहिए। फिर गंगाजल से अर्घ देना और गाय तथा पीढ़ा देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके स्वयं भोजन करना चाहिए।

इस प्रकार भीष्म पंचक व्रत की भगवान वासुदेव ने बड़ी प्रशंसा की है और इसे सब पापों का नाश करने वाला और अचल फल देने वाला बताया है।

---

* गोबर आदि खाने का जो विधान है उसका अर्थ हमारी समझ में नहीं आ सका है। हमारी अपनी राय यह है कि गोबर खाने की अपेक्षा पूर्ण उपवास करके व्रत समाप्त करना अधिक अच्छा और युक्ति संगत है।

देवोत्थापिनी एकादशी

कार्तिक शुक्ल एकादशी को देवोत्थापन किया जाता है। इस एकादशी को सोये हुए विष्णु भगवान जागे थे, इसीसे इसका नाम देवोत्थापिनी एकादशी या देवठन पड़ गया है।

कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने महापराक्रमी शंखासुर नामक राक्षस को भादो महीने की एकादशी को मारा था। उसके बाद वे घोर निद्रा में सो गये और फिर कातिक की इसी एकादशी को जागे। इस दिन विष्णु भगवान का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिए और निम्न लिखित मंत्रों को पढ़ कर उन्हें उठाना चाहिए —

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शंखघ्न उत्तिष्ठांभोधिचारक।
उत्तिष्ठ मुनिनौधार त्रैलोक्ये मंगलं कुरु॥
उत्तिष्ठ धरणीधार- वाराहादिकधारक।
कूर्मरूपधरोत्तिष्ठ त्रैलोक्ये मंगलं कुरु॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वाराह दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धर।
हिरण्याक्षप्राणघातिन् त्रैलोक्ये मंगलं कुरु॥
हिरण्यकशिपुघ्नस्त्वं प्रह्लादानन्ददायक।
लक्ष्मीपते समुत्तिष्ठ त्रैलोक्ये मंगलं कुरु॥

इस प्रकार मंत्रोच्चारण पूर्वक विष्णु भगवान की पूजा और अनेक प्रकार के बाजे बजवाकर देवोत्थापिनी का पारण करना चाहिए।

वट–सावित्री

जेठ महीने के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी से यह व्रत आरंभ होकर पूर्णिमाको समाप्त होता है। भविष्य पुराण आदि में इस व्रत का विधान कृष्ण पक्षमें, त्रयोदशीसे अमावस्या तक है। जेठकी पूर्णिमाके तीन दिन पहले, त्रयोदशीसे उपवास करके वट के मूलकी पूजा करनी चाहिए। त्रयोदशी के दिन पासकी नदी या तालाब में स्नान करके शुद्ध दातुन से मुँह धोकर, और आँवले तथा तिल से बालोंको साफ़ करके पेड़ की जड़में जल देना चाहिए। प्रसूति, रोगिणी और ऋतुमती स्त्री, इन सभी कामों को ब्राह्मण के द्वारा करवाकर पूर्ण फल प्राप्त कर सकती है, ऐसा पुस्तकों में लिखा है।

शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी के दिन वड़ के पेड़ के पास जाकर जल से आचमन करना चाहिए और तिथि महीने आदिका उच्चारण करते हुए "पति पुत्रकी आरोग्यता के लिए और जन्म जन्मान्तर में भी अचल सौभाग्य पाने के लिए यह सावित्री व्रत करती हूँ" ऐसा संकल्प करना चाहिए। संकल्प करने के उपरान्त निम्नलिखित श्लोक से वटकी प्रार्थना करनी चाहिए—

वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः।
वटाग्रे तु शिवो देवो सावित्री वटसंश्रिता॥
वट ! सिंचामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः।

ऐसा कहकर सूत के डोरे से वड़ के वृक्षको बाँध दे तथा गन्ध पुष्प और अक्षत से विधि पूर्वक पूजा करके वट और सावित्री को नमस्कार करे और वृक्ष की प्रदक्षिणा भी। इस प्रकार वट की पूजा करके घर आवे और वहाँ दीवाल पर हल्दी और चन्दन से वट का वृक्ष बनाकर उसकी पूजा मन्त्रों के साथ करे।

दीवाल पर बनाये हुए वट वृक्ष के पास बैठकर पुनः उक्त संकल्प करना चाहिए और वटके सम्मुख यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि मैं तीन रात्रियों में उपवास करके, चौथे दिन चन्द्रमाको अर्घ देकर और ब्राह्मणों को विविध मिष्ठान्नों से सन्तुष्ट करके स्वयं भोजन करूँगी। हे सावित्री ! आप हमारे इस व्रतको निर्विघ्न समाप्त करें।

इसके बाद तीन दिनों तक उपवास करके चौथे दिन व्रत का पारण करना चाहिए और ब्राह्मण भोजन कराकर तथा बाँसकी चँगेलीमें फल, वस्त्र और सौभाग्य प्रद वस्तुओं का दान करके स्वयं भोजन करना चाहिए। व्रतकी विशेष

विधि जानने के लिए निर्णय सिन्धु और व्रतराज आदि पुस्तकें देखनी चाहिए।

इस व्रत के संबन्ध में, स्कन्द पुराण में एक कथा लिखी हुई है। एक बार सनत्कुमारों ने भगवान् विष्णु से कहा कि हे भगवान्! स्त्रियों को अचल सौभाग्य देने वाला, धन और पुत्र पौत्रादिक से सम्पन्न रखने वाला, जन्म जन्मान्तर के वैधव्य को दूर करने वाला कौनसा व्रत है, कृपाकर आप मुझे बतलावें।

सनत्कुमारों की श्रद्धायुक्त यह वाणी सुनकर भगवान विष्णु प्रसन्न हुए। बोले—हे सनत्कुमार! अक्षय पुण्य को देनेवाला, जन्मान्तर के वैधव्य को नष्ट करनेवाला और अचल सौभाग्य तथा पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न रखनेवाला वह सावित्री का व्रत है। इस व्रत की कथा मैं तुम लोगों से कहता हूँ। ध्यान देकर सुनो।

मद्रदेश में अश्वपति नामक एक बड़ा धर्मात्मा और ज्ञानी राजा राज्य करता था। उसके सब कुछ था, केवल एक पुत्र नहीं था। पुत्र के न होने से राजा बहुत उदास रहा करता था। एक बार उसने पुत्र के लिए सरस्वती का यज्ञ किया। प्रसन्न होकर स्वयं सरस्वती ने उसे दर्शन दिया और वर माँगने को कहा। राजा ने कहा—मुझे आपने

क्या नहीं दिया है ! केवल मुझे एक पुत्र का अभाव है। आपकी दया होगी तो वह अभाव भी न रहेगा !

सरस्वती ने कहा—राजा ! तुम्हारे भाग्य में पुत्र तो है ही नहीं; हाँ इस यज्ञ के पुण्य से तुम्हें एक बड़ी पुण्यवती, तुम्हारा यश बढ़ानेवाली लड़की होगी। वह मेरा अवतार होगी, इसलिए मेरे नाम पर ही तुम उसका नाम रखना।

सरस्वती अन्तर्धान हो गयीं। समय पाकर अश्वपति की रानी को गर्भ रहा और नौ महीना बाद एक सुलक्षणा, कन्या उत्पन्न हुई। सरस्वती की आज्ञा के अनुसार उसका नाम सावित्री रखा गया।

सावित्री अत्यन्त तेजस्विनी लड़की थी। चन्द्रमा की कला की भाँति वह दिन दिन बढ़ने लगी। जब वह सयानी हुई तो राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। उन दिनों आज की सी मूर्खता और कुसंस्कार नहीं था और न इतना आडम्बर और रूढ़ियाँ ही थीं। अश्वपति ने एक वृद्ध मंत्री के साथ सावित्री को बाहर भेज दिया—वह अपनी रुचि के अनुकूल अपने लिए जीवन-साथी चुन ले।

सावित्री जिस समय वृद्ध मंत्री के साथ लौट कर आयी, उस समय अश्वपति राजा के पास नारद जी बैठे हुए थे।

उनके पूछने पर सावित्री ने वतलाया कि द्युमत्सेन के एकलौते पुत्र सत्यवान को उसने वरण किया है। सत्यवान के माता पिता अन्धे थे और उनका राज्य किसी दूसरे राजा ने छीन लिया था। नारद जी ने यह वात सुनी तो बहुत दुखी हुए। बोले—बेटी ! तुम्हारा निर्वाचन तो अत्यन्त उत्तम है। सत्यवान के समान गुणी, नम्र, विद्वान, शीलवान और रूपवान दूसरा कोई नहीं है; लेकिन, वह अल्पायु है। एक ही वर्ष में उसकी आयु समाप्त हो जायगी, वह मर जायगा।

नारद की इन वातों को सुनकर अश्वपति को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सावित्री से फिर वर चुनने की वात कही, किन्तु, सावित्री ने इसे स्वीकार न किया। बोली—पिताजी ! एक वार जिसे वरण कर चुकी हूँ, वही मेरा पति है।

दूसरा कोई उपाय न था। सत्यवान् से सावित्री की शादी करनी ही पड़ी। सावित्री पति के घर जाकर एक एक दिन गिनकर बिताने लगी। वीतते वीतते एक दिन वह भी आ ही गया, जिस दिन सत्यवान की आयु पूरी होती थी। उस दिन सावित्री सत्यवान के साथ जंगल में गयी। सत्यवान रोज जंगल में जाकर लकड़ियाँ काट लाया करता था।

उस दिन फल-फूल तोड़ लेने के बाद, लकड़ियाँ चुनने के लिए सत्यवान जब पेड़ पर चढ़ा तो उसके सिर में दर्द होने लगा। वह पेड़ से उतर आया और उसने सावित्री से सिर के दर्द की बात कही। वह सावित्री के जंघे पर सिर रखकर लेट गया।

यमराज के दूत आये और उन्होंने सत्यवान के शरीर से प्राण हरण करना चाहा। किन्तु, सावित्री के सतीत्व के तेज से वे उनके पास न जा सके। वह बात यमराज ने सुनी तो स्वयं आये। प्राण लेकर चल पड़े।

सावित्री ने यमराज का पीछा किया। पति को छोड़ कर भला वह कहाँ जाती ?

यमराज ने देखा, यह तो बड़ी मुश्किल है। बोले—पतिव्रता ! तू बहुत दूर तक पति का साथ दे चुकी। अब इसके आगे मनुष्य की गति नहीं है। तू लौट जा।

सावित्री ने कहा—पति को छोड़कर मैं और कहाँ जाऊँ ? तपस्या पति-परायणता और आपकी दया से मेरी गति कोई नहीं रोक सकता।

सावित्री की बातों से यमराज प्रसन्न हुए। बोले—सावित्री ! मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूँ। तू अपने पति के प्राणों के सिवा और जो कुछ चाहे, माँग ले।

सावित्री बोली—हे यमराज ! मेरे सास और ससुर अंधे हैं और उनका राज्य छिन गया है। यदि आप प्रसन्न हैं तो उन्हें दृष्टि दान दें और उनका गया हुआ राज्य फिर उन्हें मिल जाय।

यमराज—ऐसा ही होगा; लेकिन, अब तू लौट जा। व्यर्थ कष्ट क्यों उठा रही है। सत्यवान् का जीना अब असम्भव है।

सावित्री—मुझे कोई कष्ट नहीं है। पति के साथ चलने में ही मुझे सुख है। आप मुझे रोकिये मत।

यमराज—सावित्री तेरी बातें मुझे बहुत खुश कर रही हैं; अतः यदि तेरी इच्छा हो तो तू एक वर और माँग ले।

सावित्री ने अबकी अपने पिता के लिए पुत्र माँगे। यमराज उसे छोड़कर आगे बढ़े। उसने पीछा किया। इसी प्रकार उसने कई वर प्राप्त किये और अन्त में लाचार होकर यमराज को सत्यवान का प्राण भी सावित्री को लौटा देना पड़ा। यमराज ने कहा—सावित्री ! तूने अपने पतिव्रत के प्रभाव से मेरा नियम भंग कर दिया। विवश होकर मैं सत्यवान का प्राण लौटा देता हूँ। सत्यवान से तुझे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे और तुम-दोनों चार सौ वर्ष तक सुखपूर्वक राज्य करोगे।

यमराज तो चले गये। इधर, जिस वटवृक्ष के नीचे सत्यवान का प्राणहीन शरीर पड़ा था, उसमें धीरे धीरे चेतना आने लगी। जीवित होकर सावित्री के साथ सत्यवान घर गया। वहाँ उसके बूढ़े माता पिता की आँखें खुल गयी थीं। उन्हें फिर राज्य मिला। सावित्री के साथ सत्यवान ने बहुत दिनों तक राज्य-सुख भोगा और मरने पर भी वे सदा के लिए अमर हो गये।

भगवान विष्णु ने कहा कि हे सनत्कुमार! जिस वटवृक्ष के नीचे सत्यवान का प्राण यमराज ने हरण किया था, उसके और सावित्री के नाम पर उसी समय से वट-सावित्री का व्रत किया जाने लगा। यह व्रत अत्यन्त पुण्यवाला है और प्रत्येक सधवा स्त्री को यह व्रत करना चाहिए।

अनन्त-चतुर्दशी

भादों की शुक्ल चतुर्दशी को यह व्रत किया जाता है। यह व्रत प्रायः देशभर में प्रचलित है और सभी लोग इसे जानते हैं। चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल नित्यक्रिया से निवृत्त हो स्नान आदि करके अनन्त भगवान का आवाहन और विधिपूर्वक उनका पूजन करना चाहिए। दिन भर उपवास करना और सन्ध्या को व्रत का पारण करके कुछ फलाहार कर लेना चाहिये।

अनन्त का पूजन करने के उपरान्त कच्चे डोरे को हल्दी में रँग कर उसमें चौदह गाँठें देनी चाहिये। गाँठ देते समय निम्न मन्त्रों से उन्हें नमस्कार करने का भी विधान है (१) श्रियै नमः (२) मोहिन्यै नमः (३) पद्मिन्यै नमः (४) महावलायै नमः (५) अजायै नमः (६) मँगलायै नमः (७) वरदायै नमः (८) शुभायै नमः (९) जयायै नमः (१०) विजयायै नमः (११) जयन्त्यै नमः (१२) पाप नाशिन्यै नमः (१३) विश्वरूपाय नमः (१४) सर्वमंगलाय नमः। इस प्रकार उस डोरे में चौदह गाँठें देकर उसे दाहिनी भुजा में

बाँध लेना चाहिए यह डोरा अनन्त फल देने वाला और भगवान विष्णु को प्रसन्न करने वाला होता है।

अनन्त चतुर्दशी व्रत के सम्बन्ध में एक कथा कही जाती है। एकबार युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था। यज्ञ-मण्डप इतना सुन्दर और अद्भुत बनाया गया था कि दुर्योधन आदि कई निमंत्रित व्यक्तियों को जलमें स्थल का और स्थल में जल का भ्रम हो गया था। एक स्थान पर इसी भ्रम से जब दुर्योधन गिर पड़ा तो भीमसेन और द्रौपदी ने हँसकर कहा कि अन्धों की सन्तान भी अन्धी ही होती है। यह बात दुर्योधन को बहुत लगी। उसने छलसे पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए बुलाया और हार जाने पर उन्हें १२ वर्ष वनवास करने के लिए विवश किया।

प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डव द्रौपदीके सहित वनवास कर रहे थे। उस समय के पाण्डवों के दुख का हाल कौन समझ सकता है? एक बार युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण जी मिले। युधिष्ठिर ने उनसे इस दुख-निवृत्तिका कोई उपाय पूछा। कृष्ण ने कहा कि हे युधिष्ठिर! तुम अनन्त का व्रत विधि-पूर्वक करो। इससे तुम्हारे सब सङ्कट दूर होंगे। तुम्हारा गया हुआ राज्य फिर तुम्हें वापस मिलेगा। अनन्त मैं ही हूँ। तुम मेरा यह व्रत करो।

श्रीकृष्ण ने इसी संबन्ध की एक कथा भी युधिष्ठिर को सुनायी। बोले— सुमन्त नामके एक ब्राह्मण की कन्या का नाम शीला था। शीला बड़ी सुन्दरी, धर्मपरायणा और ज्योतिर्मयी थी। बड़ी होने पर ब्राह्मण ने अपनी उस कन्या को कौण्डिन्य ऋषि के साथ व्याह दिया। कौण्डिन्य ऋषि शीला को लेकर अपने आश्रमकी ओर चले। रास्ते में ही सन्ध्या हो गयी। वे एक नदी के तट पर ठहर कर सन्ध्या वन्दन करने लगे। शीला ने देखा कि नदीके तट पर सुन्दर वस्त्र धारण किये हुई बहुत सी स्त्रियाँ किसी का पूजन कर रही हैं। शीलाने उनसे पूछा कि आप लोग किसकी पूजा कर रही हैं? उन लोगों ने अनन्त व्रत की महत्ता और उसके करने की विधि उसे बतायी। शीलाने वहीं उस व्रतका अनुष्ठान किया और चौदह गाँठों वाला डोरा हाथ में बाँध कर पति के समीप आयी।

कौण्डिन्य ने शीला के हाथ में बँधा हुआ डोरा देखकर उसके बारे में पूछा। शीला ने सब कथा कौण्डिन्यको सुना दी। कौण्डिन्य शीला की बातों से प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने अनन्त व्रत का तिरस्कार किया और शीला के हाथसे डोरा तोड़ कर आग में जला दिया।

कौण्डिन्य ने डोरा जला तो दिया, लेकिन फिर वे सुखी

न रह सके। अनेक प्रकार के क्लेश और दैन्य उनपर वीतते रहे। अन्तमें जव उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी तो उन्होंने शीला से इसका कारण पूछा। शीला ने अनन्त के तिरस्कार और डोरे को जलानेकी वात उन्हें याद दिलाई। कौण्डिन्यको बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे अनन्त की प्राप्ति के लिए जंगल में चले गये। वहाँ वहुत दिनों तक वे इधर उधर भटकते रहे। अन्त में निराश हो—मूर्च्छित होकर—भूमिपर गिर पड़े। तव अनन्त भगवान् ने स्वयं उन्हें दर्शन दिया। वोले— हे ब्राह्मण! तुमने जो हमारा तिरस्कार किया था, उसी के कारण तुम्हें इतना क्लेश उठाना और भटकना पड़ा। अव, तुम्हें सुवुद्धि आयी है। मैं तुम पर प्रसन्नहूँ। जाओ, घर जाकर तुम विधि पूर्वक अनन्त व्रत का अनुष्ठान करो। १४ वर्ष तक निरन्तर अनन्त व्रत करते रहने से तुम्हारे दुख-दारिद्रय दूर हो जावेंगे।

श्रीकृष्णने कहा— युधिष्ठिर! कौण्डिन्य ने अनन्त भगवान की आज्ञा के अनुसार १४ वर्षों तक वड़ी श्रद्धा भक्तिसे विधि पूर्वक अनन्त व्रत किया और अन्तमें उसे सारे कष्टों से छुटकारा मिल गया। यदि तुमभी वह व्रत करो तो निश्चयही तुम्हारे सब दुख दूर हो जायँगे।

कहते हैं, युधिष्ठिर ने वैसाही किया और परिणाम में महाभारतका युद्ध होकर पाण्डवों की विजय हुई। उन्हें सारे संसार का राज्य मिला और निष्कण्टक होकर बहुत दिनों तक वे राज्य करते रहे।

वैकुण्ठ चतुर्दशी

कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को वैकुण्ठ चतुर्दशी कहते हैं। इस दिन दिनभर उपवास करके प्रथम विष्णु का और फिर शिव का पूजन यथा विधि करना चाहिए। फिर प्रातःकाल कमल-पुष्पों के द्वारा शिव जी को प्रसन्न करना चाहिए।

यह व्रत लोक में बहुत प्रसिद्ध नहीं है। जहाँ तहाँ यह व्रत होता है। इसे जानते भी बहुत कम लोग हैं।

कहते हैं, एक बार शिवजी की पूजा करने की इच्छा से विष्णु भगवान काशी में आये। प्रातःकाल उन्होंने मणिकर्णिका घाट पर गंगा-स्नान किया और फिर एक-हजार सुनहले कमल के फूल लेकर वे शिवकी पूजा करने के लिए चले। पहले उन्होंने शिव और पार्वती को गंगाजल से स्नान कराया और फिर गिन-गिन कर फूलों को चढ़ाने लगे। जब सब फूल खतम हो गये, तो उन्हें मालूम पड़ा कि एक फूल कम हो गया है। वे बड़े चिन्तित हुए। हजार फूल चढ़ाने का वे संकल्प कर चुके थे। लाचार होकर उन्होंने फूल के बदले में अपनी एक आँख निकाल कर

चढ़ायी। सोचा—मुझे भी तो लोग पुण्डरीकाक्ष कहते ही हैं। शिवजी ने जब विष्णु की यह भक्ति देखी तो बड़े प्रसन्न हुए। बोले—मैं आपकी भक्ति से प्रसन्न हूँ। आपकी परीक्षा लेने के लिये मैंने ही एक फूल छिपा लिया था। आप परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं अतः मैं आपको त्रिलोकी का राज्य देता हूँ। आप इसका योग्यता पूर्वक पालन करें, और जिसकी जरूरत हो वह भी मुझसे कहें।

विष्णु ने कहा—त्रिलोकी का राज्य करते समय जो असुर उपद्रव करेंगे उनका शासन मैं कैसे करूँगा ?

शिव ने सुदर्शन चक्र दिया। बोले—इसका प्रताप बड़ा प्रबल है। इसकी चोट सहने की शक्ति त्रिभुवन में किसी में नहीं है। आप इसको धारण कीजिये। आज आपने मेरा पूजन करके मुझे प्रसन्न किया है, इसलिए इस तिथि का नाम वैकुण्ठ चतुर्दशी पड़ेगा और जो लोग श्रद्धापूर्वक इस व्रत का पालन करेंगे वे संसार में अवश्य ही सुख पावेंगे और मृत्यु के उपरान्त वैकुण्ठ के अधिकारी होंगे।

महाशिवरात्रि

महाशिवरात्रि व्रत फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को मनाया जाता है। "अपने पापों का नाश करने और अक्षय मोक्ष प्राप्ति की कामना से यह शिवरात्रि व्रत करता हूँ" ऐसा संकल्प करके विधिपूर्वक शिवजी की पूजा करनी चाहिये। चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल स्नान आदि से पवित्र होकर दिन-भर उपवास करना और फूल-पत्तों और वस्त्रों से सजाकर एक सुन्दर मण्डप तैयार करना चाहिये। मण्डप में सर्व-तोभद्र की वेदी बनाकर उसपर एक घट स्थापित करना और घट पर शिव-पार्वती की स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। मूर्ति के पास ही चाँदी का नादिया भी बनाना चाहिये। मूर्ति को वस्त्रालंकारों से भली भाँति सजाकर बेलपत्रों से उनकी पूजा करनी चाहिये और चन्द्रमा आदि आठों गणों को भी पूजने का विधान है। रातभर वेद पुराण आदि सुनते या पढ़ते हुए जागरण करना चाहिये और प्रातःकाल उठकर स्नान-सन्ध्या करके "त्र्यंबकं यजामहे" इस मंत्र से जौ, तिल और खीर की १०८ आहु-तियों से हवन करना चाहिये। फिर बेलपत्रों से भी हवन

करके और ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देकर तथा भोजन कराकर स्वयं भोजन करना चाहिये।

इस व्रत के संबन्ध में जो कथा प्रचलित है और जो लिंगपुराण में भी लिखी हुई है, यहाँ उद्धृत की जाती है। यह कथा पार्वती के पूछने पर महादेव जी ने उन्हें सुनायी थी।

पुराने समय में एक व्याध जंगली जीवों को मारकर अपनी जीविका चलाता था। एक वार फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की इसी तिथि को वह व्याध जीविका की तलाश में भूखा-प्यासा दिन भर जंगल में घूमता रह गया, किन्तु एक भी शिकार न पा सका। लाचार होकर, एक तालाब के पास रात विताने का निश्चय करके वह बैठ गया। वहाँ एक शिवलिङ्ग स्थापित था और बेल का एक वृक्ष भी था। व्याध ने बहुत सा बेलपत्र तोड़कर शिवलिङ्ग को ढक दिया और वहीं बैठकर चुपचाप शिकार की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी रात बीतने पर एक गर्भिणी हरिणी उस तालाब के किनारे पानी पीने आयी। उसे देखकर व्याध बहुत प्रसन्न हुआ और उसने धनुष पर बाण चढ़ा लिया। हरिणी ने उसे देख, गिड़गिड़ाकर कहा—व्याध! तुम मुझे

मत मारो। मैं गर्भिणी हूँ। मेरा गर्भ पूर्ण हो चुका है। मुझे मारने से तुम्हें भ्रूणहत्या का पातक लगेगा। बच्चा हो जाने पर मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास लौट आऊँगी। उस समय तुम जो चाहना, करना।

व्याध ने कहा—यदि तुम लौटकर न आयी तो?

हरिणी बोली—व्याध! तुम मेरी बातों पर विश्वास करो। मैं अवश्य लौट आऊँगी। यदि न आयी तो मुझे कृतघ्न होने का पाप लगेगा।

उस दिन शिवरात्रि थी और यद्यपि व्याध ने अनजाने ही दिन भर उपवास किया था और महादेव पर बेलपत्र चढ़ाया था, किन्तु इस प्रभाव से उसकी बुद्धि में कुछ परिवर्तन हो गया था। उसने हरिणी को मारा नहीं, छोड़ दिया। वह चली गयी। व्याध बैठकर दूसरे शिकार की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर बीतते न बीतते ही एक दूसरी हरिणी वहाँ आ पहुँची। व्याध ने उस पर तीर साधा तो वह भी गिड़गिड़ाने लगी—व्याध! मैं अभी ऋतुनिवृत्त हुई हूँ। सकामा हूँ। मुझे मत मारो। मैं शपथ पूर्वक कहती हूँ, अपने पति से मिलकर मैं फिर शीघ्र ही तुम्हारे पास लौट आऊँगी।

व्याध ने उसकी बात पर भी विश्वास कर लिया और उसे छोड़ दिया। उसके चले जाने के बाद एक तीसरी हरिणी आयी; उसके साथ कई बच्चे भी थे। उसे देखकर व्याध को कुछ प्रसन्नता हुई और वह उस पर बाण छोड़ने ही वाला था कि हरिणी ने आर्तस्वर से कहा—व्याध! मेरे साथ बच्चे हैं। बच्चोंवाली माता को मारने का पाप शायद तुम्हें मालूम नहीं है। तुम मुझे छोड़ दो। अपने इन बच्चों को इनके पिता के पास लौटाकर फिर जब मैं तुम्हारे पास आऊँगी तो तुम मुझे मार डालना।

व्याध को इसकी बातों की भी प्रतीति हो गयी और उसने हरिणी पर बाण नहीं छोड़ा। अपने बच्चों के साथ वह वहाँ से चली गयी।

धीरे धीरे सवेरा हो आया। उस समय एक बड़ा बलिष्ठ और सुन्दर हरिण उसी तटपर आ पहुँचा। व्याध ने सन्तोष की एक साँस ली और तीर उसके धनुष से छूटना ही चाहता था कि हरिण बोल उठा—व्याध! यदि मेरे पहले आयी हुई हरिणियों का वध तुम कर चुके हो तो मुझे भी खुशी से मार डालो। उनके बिना मेरा जीना व्यर्थ है। जीने की मुझे साध भी नहीं है। किन्तु,यदि तुमने उन्हें नहीं मारा तो मुझे भी इस समय छोड़ दो। मैं उनका पति हूँ। एक बार

मैं उनसे मिल आऊँ तो तुम मुझे मारना। उनसे विना मिले यदि तुम मेरी हत्या कर डालोगे तो उनकी इच्छाएँ भी पूरी न हो सकेंगी और जिस उद्देश्य से तुमने उनकी हत्या नहीं की, तुम्हारा वह उद्देश्य भी सफल न हो सकेगा।

व्याध ने सोचा—ठीक ही तो है। बस, उसे भी छोड़ दिया। वह छलाँग मारता हुआ जंगल में अदृश्य हो गया।

दिन भर उपवास करने, रात भर जागरण करने तथा शिवलिंग पर बेलपत्र चढ़ाने के कारण व्याध के हृदय में एक प्रकार की पवित्रता और अन्तःकरण में कोमलता उत्पन्न हो गयी थी। सबों के चले जाने पर उसने सोचा कि अब वे यदि लौट भी आवेंगे, तो उन्हें न मारूँगा।

इधर, हरिण जाकर हरिणियों से मिला। मिलजुलकर उन लोगों ने फिर व्याधके पास लौट जाने का निश्चय किया और उसी निश्चय के अनुसार दल बाँध कर वे सब व्याध के पास आये। उनका सत्य पर इतना प्रेम देखकर अपने प्रति व्याध को बड़ी ग्लानि हुई। वह विकल होकर रो पड़ा और मन ही मन उसने निश्चय किया कि अब कभी जीव हत्या न करूँगा।

देवमण्डली यह सारी लीला देख रही थी। भगवान

शंकर ने शिवलोक से दो विमान भेजकर हरिण-हरिणियों और व्याध को अपने लोक में बुला लिया।

यह उस तिथि का और व्रत का ही प्रभाव था जिसने अज्ञान में भी व्याध को मुक्ति दिला दी।

भैया-दूज

इस व्रत को यम द्वितीया भी कहते हैं। कातिक महीने के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को यह होता है। इस दिन यमराज ने अपनी वहिन के घर जाकर भोजन किया था और उन्हें इच्छित वर दिया था, इसी कारण इस दिन का इतना महत्व है और इसका नाम भी यमद्वितीया पड़ गया है।

इसदिन प्रातः काल स्नान करके "अपने सुहाग और भाई के दीर्घ जीवनकी इच्छा से यह व्रत करती हूँ" ऐसा संकल्प करके वहिन यमराज का आवाहन और फिर पूजन करती है। यमराजकी पूजाके बाद वह भाई को रोली का तिलक करती है, भोजन कराती है; भाई उसे गहनों, कपड़ों तथा रुपयों से सन्तुष्ट करता है। वहिन यमराज से प्रार्थना करती है—हे यमराज! मेरे भाई को बड़ी उम्र दो। यमराज के साथ ही इस व्रत में सूर्य की बेटी यमुना की भी पूजा की जाती है।

यह व्रत भाई-वहिन की प्रीति की यादगार और बिछुड़े हुए एक माँ बाप की सन्तान के मिलने की एक तिथि है। इस दिन प्रत्येक भाईको अपनी वहिन के यहाँ जाकर भोजन

करना और उसे गहनों-कपड़ों से सन्तुष्ट करना चाहिए। जीवन की अनेक पुण्य-तिथि में एक यह भी तिथि है, जब बचपन की अनेक स्मृतियाँ लेकर भाई-बहिन मिलते और खुश होते हैं, जिस दिन सारा काम धन्धा छोड़कर और अधीर होकर बहिन भाई की प्रतीक्षा करती और भाई बहिन के यहाँ जाने, और उससे मिलने के लिए उत्कण्ठित हो उठता है। हमारे यहाँ, प्रायः प्रत्येक व्रत के सम्बन्ध में कोई न कोई कथा प्रचलित है और इसके संबन्ध में भी है। हम नहीं जानते, उनमें सत्य की मात्रा कितनी है; पर, इसमें सन्देह नहीं कि यह पवित्र त्यौहार है, जिसमें भाई-बहन अपने हृदय की पवित्र भावनाओं के साथ एक दूसरे की मंगलकामना करते और बहुत दिनों पर मिल कर परस्पर प्रीति लाभ करते हैं।

कहते हैं, यमुना और यमराज—दोनों—एक पिता माता की सन्तान—भाई-बहिन हैं। यमुना प्रति दिन यमराज के घर जाती और उनसे अपने यहाँ भोजन करने के लिये चलने की प्रार्थना करती थी। एक दिन यमराज यमुना के घर स्वयं ही पहुँच गये। वह दिन कातिक महीने के शुक्ल पक्ष की द्वितीया थी। यमुना ने यमराज को बड़े आदर से लिया और उनकी पूजा

की। भोजन कराया। यमुना की खातिरदारी से यमराज प्रसन्न हुए और उन्होंने यमुना को गहने-कपड़ों का उपहार दिया। चलते समय, यमराज ने यमुनासे कहा कि बहिन, मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूँ। तुम जो चाहो, माँगो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।

यमुनाने कहा—भैया! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो, तो हरसाल इसी दिन आकर मेरे यहाँ भोजन किया करो और इस दिन जो लोग बहिन के घर जाकर भोजन करें उन्हें सद्गति दो।

यमराज ने कहा—ऐसाही होगा। वे चले गये। यमुना की इच्छा पूरी हुई। वह-दिन इस स्मृति का एक पवित्र चिन्ह—त्योहार—हो गया। इसका नाम यमद्वितीया या भैया दूज पड़ा और इसे इतना महत्व दिया गया।

हमारे देशमें प्राय: सर्वत्र ही यह त्योहार मनाया जाता है और किसी न किसी रूप में सभी लोग इसे जानते हैं।

अक्षय-तृतीया

वैशाखके शुक्ल पक्ष की तृतीया ही अक्षय तृतीया है। इसदिन स्नान करके पुष्पधूप आदिसे लक्ष्मीनारायणकी पूजा करनी चाहिए। एक सन्ध्या भोजन करना चाहिए और पितृ तर्पण तथा देव पूजन भी।

इस दिन जौ का बड़ा महत्व माना जाता है। जौ का हवन किया जाता है, जौ से विष्णु भगवान की पूजा की जाती है। ब्राह्मणों को जलसे भरा हुआ घड़ा, पङ्खा, चावल, दही और जौ-चना का सत्तू दान दिया जाता है।

इसदिन गङ्गा-स्नान का बड़ा महत्व है। जो लोग आज के दिन गंगा-स्नान करते, व्रत रहते, और विधि पूर्वक पूजन-दान करते हैं, उन्हें अक्षय पुण्य होता है और वे निश्चय बैकुण्ठ लोक प्राप्त करते हैं। यह तृतीया युगादि तृतीया भी कही जाती है। कहते है, इसी तृतीया से सत्ययुग का प्रारंभ हुआ था।

प्राचीन समय में एक बड़ा दरिद्र वैश्य था। वह सत्य और प्रिय बोलने वाला, श्रद्धालु तथा देवता और पितरों का पूजनेवाला था। उसका कुटुम्ब बहुत बड़ा था, इससे वह

सदाही चिन्तित और दुखी रहा करता था। एक बार उसने अक्षय तृतीया का महत्व सुना। वह रोगी था, निर्धन था, फिर भी धर्म से पराङ्मुख नहीं हुआ और गंगा में जाकर उसने स्नान किया। देवों का पूजन और पितरों का तर्पण किया। घर आकर—स्त्री के मना करने पर भी—शक्तिके अनुसार उसने ब्राह्मणों को दान दिया।

इस दान-पूजन के प्रभाव से अगले जन्ममें उसे एक क्षत्रिय के घर में जन्म मिला। वह बड़ा धनी और धर्मात्मा हुआ। इसी प्रकार जो लोग नियमपूर्वक इस व्रत का पालन करते हैं, उन्हें वैकुण्ठ प्राप्ति होती है और अगले जन्म में वे धन धान्य से सुखी होते हैं।

आजके दिन भगवान् के पूजन में भी सत्तू रक्खा जाता है। आजही के दिनसे नगर में, जगह-जगह पानी पिलाने के लिए प्याऊ बैठाये जाते हैं। अक्षय तृतीया व्रत जितना महत्व पूर्ण है, उतने उमंग से यह मनाया नहीं जाता। इस व्रत का हमारे देशमें अधिक प्रचार होना चाहिये।

नाग-पंचमी

सर्पों की पूजा कबसे और क्यों आरम्भ हुई, इसका कुछ ठीक पता मालूम नहीं पड़ता, पर इसमें सन्देह नहीं कि हमारे यहाँ साँपों की गणना देवयोनि में होती है और इनकी पूजाभी बहुत प्राचीन समय से होती आयी है।

सावन के शुक्ल पक्ष को नाग पंचमी मनायी जाती है। इसदिन नागों की पूजा होती और अनेक स्थानों पर बड़े मेले लगते हैं।

नाग पंचमी के दिन घर के दरवाज़े के दोनों ओर की दीवाल गोबरसे लीपकर पवित्र करना चाहिए। फिर, सोना, चाँदी, लकड़ी या मिट्टी की कलम लेकर हल्दी और चन्दन से पाँच फनवाले पाँच नाग लिखना चाहिए। धूप, दीप, पुष्प आदिसे नाग पूजा करके उन्हें लावा, खीर और पंचामृत का भोग लगाना चाहिए। पुनः ब्राह्मणों को खीर और लड्डू खिलाना चाहिए। नाग पंचमी के दिन भूमि खोदनेका निषेध विशेष रूपसे किया गया है। हम नहीं जानते इसका कारण क्या है; पर, मालूम पड़ता है कि जहाँ तहाँ इसके संबन्ध में जो एक कथा प्रचलित है, उससे इसका कुछ सम्बन्ध अवश्य है।

किसी नगर में एक ग़रीब किसान रहता था। खेती-बारी से ही उसकी जीविका चलती थी। उसके परिवार में स्त्री, एक कन्या और दो पुत्र थे। एकदिन खेत जोतते समय हलके नीचे दब कर एक नागिन के तीन बच्चे मर गये। इससे नागिन को बहुत क्रोध आया और देरतक वहीं फन पटक पटक कर वह दुःख करती रही, फिर बदला लेने के विचार से किसान के घरकी ओर चल पड़ी।

किसान के यहाँ जाकर उसने किसानके साथ उसकी स्त्री और दोनों पुत्रों को डस लिया। जब वह उसकी कन्या को डसने चली तो कन्या बहुत डर गयी। उसने नागिन के सामने दूध रख दिया और उसकी प्रार्थना करने लगी। कन्या को मालूम नहीं था कि वह दिन सावन शुक्ल पंचमी थी। कन्याकी पूजासे नागिन सन्तुष्ट हुई और उसने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। कन्याने वर माँगकर अपने माता पिता और भाइयों को जिला लिया। कहते हैं, इस त्यौहार का प्रारंभ वहीं से है।

किन्तु, यह बात भी कुछ प्रामाणिक नहीं है। नागों की पूजा अति प्राचीन समय—वेदों के युग—से चली आ रही है। अनेक स्थानों में इसके संबन्धमें अनेक दन्तकथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनके आधार का पता लगाना आसान नहीं है।

वसन्त-पञ्चमी

इस त्योहार का संबन्ध ऋतु से है। यद्यपि चैत और बैसाख ये ही दो महीने वसन्त ऋतु के माने गये हैं, परन्तु यह उत्सव माघ महीने के शुक्लपक्ष की पंचमी को ही किया जाता है। बात यह है कि वसन्त के आगमन की सूचना इसी समय से हमको मिलने लगती है और इसी से हम-लोग भी इसके स्वागत की तयारी पहले से ही कर लेते हैं।

माघ के महीने से ही प्रकृति के रूप में परिवर्तन होने लगता है। बनों और बगीचों में वसन्त का अपूर्व लावण्य छिटकने लगता है, भौंरे और कोयलें मस्त होकर अलापने लगती हैं। वृक्षों में नयी-नयी, कोमल-अरुण-पत्तियाँ निकल आती हैं। फूलों की कलियाँ चटक उठती हैं। खेतों में झुक झुक कर झूमते हुए शस्य अपनी सुन्दरता का सानी नहीं रखते। वसन्त पञ्चमी का उत्सव इन्हीं चिन्हों का स्मरण है।

वसन्तपञ्चमी के दिन नारायण की पूजा का विधान है। इस दिन उबटन और तेल लगा कर स्नान करना और फिर उत्तम वस्त्राभूषण धारणकर भगवान् विष्णु का पूजन करना

चाहिये। विष्णु-पूजन के उपरान्त पितरों के तर्पण और ब्राह्मण भोजन का भी विधान है।

वसन्तपञ्चमी के दिन स्थान-स्थान पर बड़ा उत्सव होता है। धनिकों के यहाँ इस दिन विशेष रूप से गाने बजाने का आयोजन होता है। कुछ लोग जलक्रीड़ा करते हैं, कुछ लोग वन-विहार। मिठाइयों और फलों का बायन भी लोग अपने हित-मित्रों के यहाँ भेजते हैं।

वसन्त, ऋतुओं का राजा है, ऋतुराज कहा जाता है। इसके आगमन के उपलक्ष में बड़ी तैयारियाँ, बड़े ठाठ-बाट होते हैं। विष्णुके मन्दिरोंमें इस दिन बड़ी सजावट, बड़ा शृंगार होता है। भगवान की प्रतिमा को वसन्ती कपड़ा पहिना कर खूब शृंगार करते हैं। मन्दिर में गाना बजाना होता है। लोग दर्शनों के लिये टूट पड़ते, एक खासा मेला लग जाता है।

इस पञ्चमी को लोग गुलाल उड़ाते, वसन्ती वेश धारण करते और नवीन उत्साह तथा प्रसन्नता से अपना हृदय भर लेते हैं।

इस दिन कामदेव और रति की पूजा भी होती है। वसन्त कामदेव का सहचर है, इससे कामदेव की पूजा का भी बड़ा महत्व है। इस दिन रति और कामदेव की

पूजा अवश्य होनी चाहिए। रति, पतिव्रताओं में श्रेष्ठ है। कामदेव संसार के शासक हैं। उनकी पूजा करके इस नवीन ऋतुमें उनकी प्रसन्नता अर्जित करनी चाहिये।

इसी पञ्चमी को नवान्नेष्टि या नवशस्येष्टि भी होती है। किसान लोग इस दिन खेत में उपजे हुए नये अन्न ले आते और उसमें घी-मीठा मिला कर उसे अग्नि को, पितरों को और देवों को अर्पित करते और फिर उसका नेवान करते हैं। नया अन्न खाने को नेवान करना कहते हैं।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से यह उत्सव बड़ा महत्वपूर्ण और आवश्यक है। जरूरत है कि इसे और महत्व दिया जाय तथा लोगों को इसकी आवश्यकता बतलायी जाय।

तुलसी-विवाह

नदियों में जिस प्रकार गङ्गा नदी हिन्दुओं की पूजनीय और सब पापों का नाश करने वाली है, तुलसी का महत्व भी वैसा ही है। हिन्दू जाति सदा से धर्मप्राण और पर-लोक में विश्वास रखनेवाली रही है। अपनी धर्मप्रियताके कारण ही उसने जीवन के लिए प्रत्येक आवश्य कार्यों को धर्म का रूप दे दिया है। धर्म और ईश्वर का नाम ले लेने से ही हिन्दू-जाति किसी बात पर श्रद्धा और विश्वास कर लेती रही है। ईश्वर ने जिस पदार्थ को अपनाया, जिसे महत्व दिया, वह हिन्दुओं के लिए पूज्य हो गया।

और लोगों की दृष्टि में भले ही तुलसी भी साधारण पौधों की तरह का एक पौधा हो, पर हिन्दुओं के लिए वह एक खास और माननीय वस्तु है। वास्तवमें तुलसी में गुण हैं भी बहुत से। जाननेवाले वैज्ञानिक भी अब इस बात को स्वीकार करने लगे हैं।

गङ्गाजल के समान ही, पूजा के लिए तुलसीदल का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। विष्णु ने इसे महत्व दिया है,

स्त्रियाँ इसे सौभाग्य देनेवाली मानती और सौभाग्य प्राप्ति के अर्थ इसकी पूजा करती हैं।

इसी तुलसी के विवाह का उत्सव कार्तिक शुक्ल एकादशी को होता है। एकादशी के दिन विष्णु की सुवर्णमयी मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिये और उसे सजा कर बाजे-गाजे के साथ तुलसीके वृक्षके समीप ले जाना चाहिए विष्णु का आवाहन करके, विधिपूर्वक तुलसीके साथ उनका विवाह कराना चाहिये। विवाह के समय मंगल-वाद्य बजने चाहिये और स्त्रियों को विवाह का गीत गाना चाहिये। विवाह कराते हुए निम्न लिखित श्लोक कह कर तुलसी का दान करना चाहिये।

पार्वती वीज संभूता वृन्दाभस्मनि संस्थिताम्।
अनादिमध्य निधनां वल्लभां च ददाम्यहम्॥

इस 'पार्वती वीज संभूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम्' की एक कथा है। पद्म पुराण में लिखा है कि जालंधर नाम का दैत्य प्राचीन काल में बड़ा उपद्रव करता था। उसकी वृन्दा नाम की एक परम रूपवती और पतिव्रता स्त्री थी। स्त्री के पतिव्रत के प्रभाव से वह त्रिभुवन में अजेय हो रहा था और किसी प्रकार परास्त नहीं किया जा सकता था। उसके उपद्रवों से व्याकुल हो कर, एकबार ऋषियों और ब्राह्मणों

के बड़े भारी समूह ने जा कर विष्णु भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवन ! जालंधर नामका राक्षस हम लोगों को बड़ा तंग कर रहा है और कोई क्रिया अनुष्ठान निर्विघ्न नहीं करने देता। अब वह देवलोक पर चढ़ाई कर रहा है और इन्द्र का पद पाने की इच्छा कर रहा है। अपनी स्त्री के पतिव्रत के प्रभाव से वह कहीं परास्त नहीं होता और देवलोकका राजा होकर वह और भी उपद्रव करेगा। आप हम लोगों की रक्षा कीजिये।

ऋषियों और ब्राह्मणों की बात सुनकर विष्णु भगवान बहुत नाराज हुए और उन्हों ने कहा कि आप लोग चिन्ता न करें। मैं वृन्दा का पतिव्रत नष्ट करूँगा और आप लोगों की रक्षा करूँगा क्योंकि पतिव्रत का पालन परलोक की कामना से किया जाता है, अनाचार फैलाने के लिये नहीं।

विष्णु भगवान् से आश्वासन पाकर ऋषि गण लौट गये। विष्णु ने वृन्दा के आँगन में दो मृत वन्दरों का शरीर फेकवा दिया। वृन्दा ने जब उन्हें देखा तो उसे मालूम पड़ा कि वह उसके पतिका ही कटा हुआ शरीर है। इस प्रकार, पति को मृत जान कर वह अनेक प्रकार से विलाप करने लगी। उस समय वहाँ एक साधु आया और उसने कहा कि हे पतिव्रता ! यदि तू

अपने इस पति के लिए इतनी व्याकुल हो रही है तो मैं इसे पुनः जीवित कर दूँगा।

वृन्दा ने साधु की बहुत चिरौरी की। साधु ने जालन्धर को जीवित कर दिया और वृन्दा उसके गले लग गयी।

पर, बात ऐसी नहीं थी। जालंधर मरा नहीं था। वह तो वहाँ से दूर, देवलोक में, इन्द्र के साथ युद्ध कर रहा था। विष्णु भगवान ने छलसे जालंधर का रूप धारण किया और वृन्दा के साथ रहने लगे। यह बात पीछे वृन्दा को मालूम हुई।

वृन्दा का पतिव्रत नष्ट हो जाने से रणक्षेत्र में सचमुच जालंधर की मृत्यु हुई और वृन्दाने यह संवाद सुना। सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया और उसने विष्णु को शाप दिया कि "जिस प्रकार तुमने मुझे यह पति वियोग का दारुण दुख दिया है, उसी प्रकार तुम्हें भी पत्नी वियोग का घोर क्लेश भोगना पड़ेगा और इसके लिये धरातल पर जन्म लेना पड़ेगा। उस समय केवल ये दो वानर ही तुम्हारी सहायता करेंगे।"

विष्णु को शाप देकर वृन्दा तो पति के शव के साथ सती हो गयी और विष्णु अनेक प्रकार की बातें सोचते हुए मन ही मन बहुत दुखी हुए। उन्हें वृन्दा को छलने का बड़ा

पश्चात्ताप हुआ और वे अत्यन्त विह्वल हो गये। इनकी यह अवस्था देखकर देवताओं ने इन्हें बहुत समझाया और पार्वती जी ने इनकी प्रसन्नता के लिये वृन्दा की चिता के भस्म में आँवला, मालती और तुलसीका वृक्ष लगाया। उसमें तुलसी को ही विष्णु ने वृन्दा का स्वरूप समझा और उसे अपनी प्रिया बनाया।

वृन्दा के शाप के कारण विष्णु को रामावतार में सीता के वियोग का असह्य दुख सहना पड़ा और हनुमान तथा सुग्रीव नाम के दो वानरों ने उनकी सहायता की।

इस प्रकार सब विधानों को करते हुए विष्णुकी प्रसन्नता के लिये प्रति वर्ष तुलसी-विवाह का उत्सव बड़े धूम से करना चाहिये।

वामन-जयन्ती

भादों की शुक्ल पक्ष की द्वादशी को वामनावतारकी जयन्ती मनायी जाती है और व्रत किया जाता है। उस तिथिको यदि श्रवण नक्षत्र हो तो वह बड़ी पुण्यवाली समझी जाती है। द्वादशी को दिनभर उपवास करना और भगवान् वामन की सोने की मूर्ति बनाकर विधि पूर्वक उसका पूजन करना चाहिये। उस मूर्ति को शिखा, सूत्र, कमंडल और छत्र से अलंकृत करना चाहिये और बाँस के किसी बर्तन में भर कर फल रखना और उसे वस्त्रों से ढक देना चाहिए। फिर, धूप,दीप, नैवेद्य देकर मूर्ति का पूजन करे और निम्न लिखित मंत्र से प्रार्थना करे—

ब्रह्माण्डमुदरे यस्य महद्भूतैरधिष्ठितम्।
मायावी वामनः श्रीशो समायातु जगत्पतिः॥

प्राचीन समय में बलि नाम के महापराक्रमी राजा ने त्रिभुवन को जीत लेने के उपरान्त देवलोक पर भी कब्जा कर लिया। इससे घबराकर स्वर्ग के सारे देवता विष्णु भगवान् के पास गये और उन्होंने कहा कि भगवन्! हम लोग बड़ी विपत्ति में हैं। चारोंओर मारे-मारे फिर रहे हैं।

दानवों के राजा बलि ने देवलोक पर अधिकार जमा लिया है। हम लोगों की आप रक्षा कीजिये।

विष्णु ने उन्हें आश्वासन दिया—आप लोग निश्चिन्त होइये। मैं आप लोगों की रक्षा का प्रबन्ध करता हूँ। बलि मेरा परम भक्त है। वह बड़ा गुणवान और सदाचारी है। राक्षस कुल में जन्म लेने पर भी उसने बल से नहीं किन्तु अपनी तपस्या से देवलोक प्राप्त किया है। लेकिन अब उस की तपस्या क्षीण हो चली है और देवलोकमें उसका आधिपत्य होना मुझे भी अभीष्ट नहीं है। अतः आपलोग अदिति के पास जा कर प्रार्थना कीजिये कि वह मेरी आराधना करे और मैं उसके पुत्र रूप में भूतल पर अवतार ले कर आप लोगों के दुःख दूर करूँ।

देवताओं की प्रार्थना पर अदिति ने विष्णु की आराधना की और समय पर विष्णु भगवान ने उसके गर्भ से वामन रूप में अवतार धारण किया। अदिति के पति महाराज कश्यप ने शास्त्रोक्त विधिसे वामन का यज्ञोपवीत आदि संस्कार सम्पन्न किया। भगवान् को पृथ्वी पर जन्म ले कर अपना कार्य सिद्ध करना था। इसी के लिए उन्होंने मानव शरीर धारण किया था। अतः कुछ दिनों के बाद दण्ड-कमण्डल, और अजिन-चर्म आदिके ब्राह्मण वेषसे सज्जित

हो कर वलि को छलने के अभिप्राय से वे उसके यज्ञभूमि पर पहुँचे।

वलिने अपूर्व तेजस्वी वामन-ब्राह्मण को देखा तो वड़ा उल्लसित हुआ और वोला— हे महाराज! आपके आगमन से मैं अपने को वड़ा सौभाग्यशाली समझता हूँ। आप मुझे कुछ सेवा वतलाएँ। ऐसी कोई चीज नहीं, जिसे मैं आप को अर्पित न कर सकूँ।

वामन ने कहा—राजा! मैं ब्राह्मण हूँ। संसार के भोग-विलास की किसी चीज का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। यदि तू दे सके तो तीन डग पृथ्वी मुझे नाप दे। मैं उसी में अपना पठन-पाठन का कार्य करूँगा।

बलि ने संकल्प किया कि मैं आपको तीन डग पृथ्वी दान देता हूँ। दैत्य-गुरु शुक्राचार्य ने उन्हें ऐसा करने से मना किया, लेकिन वे तो संकल्प कर चुके थे।

वामन ने अपने दो पैरों से आकाश-पाताल को नाप कर तीसरे पैर में बलिका शरीर भी नाप लिया और उसे बाँध-कर पाताल में भेज दिया। देवताओं का दुख दूर हुआ। वे प्रसन्नता पूर्वक फिर अपने अपने निवास पर गये।

इस कथा को कहने-सुनने वाले निश्चय ही बड़े पुण्य को प्राप्त करते हैं।

धन-त्रयोदशी

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन त्रयोदशी या धनतेरस मनायी जाती है। यह दीवाली से दो दिन पहिले होती है। इस दिन यमराज के लिए सब लोग एक दीपक जलाकर अपने अपने गृह-द्वार पर रखते हैं और यमराज का पूजन करते हैं। यह एक प्रकार की रस्म है। इसे उत्सव ही कहा जा सकता है।

धन तेरस के दिन यमराज के लिए जो दीपक जलाया जाता है, उसके सम्बन्ध में एक किम्वदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं, एक बार यमराज ने अपने दूतों को बुलाकर पूछा कि जीवों का प्राण हरण करने में कभी तुम लोगों को दया भी आयी है या नहीं ? मुझसे सब बातें कहो।

एक दूत ने हाथ जोड़कर नम्र वाणी में कहा—"हे महाराज, हंस नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा था। एक बार वह शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। वह रास्ता भूल गया। भटकता हुआ राजा हेम के यहाँ जा पहुँचा। राजा हेम ने हंस का बड़ा सत्कार किया और उन्हें सब प्रकार से सुखी करने की चेष्टा की। उसी दिन हेमराज के

यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। आनन्द की बधाइयाँ बजने लगीं। मंगलचार होने लगा। सब लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

लेकिन, सहसा एक बड़ी विपत्ति दीख पड़ी। छठ के पूजन में देवी ने स्वप्न दिया कि विवाह के चार दिन बाद ही यह लड़का मर जायगा। इससे लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। सारी प्रसन्नता शोक के रूप में परिणत हो गई। राजा हंस ने उस लड़के को चिरायु करने की कामना से उसे यमुना के तट में रखा, किन्तु, जब उसका विवाह हुआ तो हमलोगों को प्राण-हरण करना ही पड़ा। हे महाराज! उसी बालक का प्राण-हरण करते समय हमलोग अत्यन्त दया परवश हो गये थे और हमलोगोंको बड़ा दुख हुआ था। ऐसे समय में इस घटना का होना अत्यन्त अवाञ्छ-नीय है। आप कोई ऐसा उपाय बतलाइये, जिसमें लोग इस प्रकार की आपत्तियों से मुक्त हो जायें।

यमराज ने दूतों की बात सुनी। बोले—जो लोग धन-त्रयोदशी को विधिपूर्वक मेरा पूजन करेंगे और मेरे निमित्त दीपदान करेंगे, उनकी असामयिक मृत्यु कभी न होगी। तभी से यमराज के पूजन और दीपदान की विधि चली आती है।

नरक-चतुर्दशी

धन त्रयोदशी के दूसरे दिन कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी होती है। इस दिन प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठकर तेल-उबटन लगाकर खूब स्नान करना चाहिए। आज के स्नान का बड़ा महत्व है। जो लोग आज के दिन सूर्योदय के पूर्व स्नान नहीं कर लेते और आलस्यवश दिन चढ़े तक सोते रहते हैं, उनका वर्षभर दुख में बीतता है और वे मलिन तथा दरिद्र रहते हैं।

प्रातः स्नान करके यमराज का तर्पण करे और फिर तीन जलांजलि दे। यह तपरण सभी को करना चाहिए। इसी दिन संध्या को दीपक भी जलाते हैं, मगर यह लक्ष्मी-पूजन की दीवाली नहीं होती। इसे छोटी दीवाली कहते हैं। असली दीवाली इसके दूसरे दिन—लक्ष्मीपूजन के समय—कार्तिक कृष्ण अमावस्या को होती है।

दीपक जलाने की विधि त्रयोदशी से लेकर अमावस्या तक, तीन दिन, है। त्रयोदशी को यमराज के लिए एक दीपक, चतुर्दशी को छोटी दिवाली और अमावस्या को लक्ष्मीपूजन और बड़ी दीवाली होती है।

कहते हैं, वामनावतार के विष्णु भगवान ने इन्हीं तीन दिनों में पृथ्वी नापी थी। दो पैर से समस्त पृथ्वी को नापकर और तीसरे से वलिका शरीर नापकर जब भगवान उसे पाताल भेजने लगे तो बोले—वर माँगो। मैं प्रसन्न हूँ। वलि ने कहा—हे भगवान्! आपने त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या इन तीन दिनों में मेरा राज्य नापा है, इसलिए इन तीन दिनों में जो यम के लिए दीपक जलाए, लक्ष्मी पूजन करे और दीवाली मनाए उसे यमराज न सतावें और लक्ष्मी उसे त्याग न करें, आप मुझे यही वरदान दीजिये।

भगवान ने प्रसन्न होकर वैसा ही वरदान दिया। तब से ही त्रयोदशी से लेकर अमावस्या तक लोग दीपदान, यम-पूजन, लक्ष्मीपूजन और दीपावली का उत्सव करते हैं।

लक्ष्मी पूजन और दीपावली

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को लक्ष्मी पूजन होता है। इस दिन बड़े उत्साह और समारोह के साथ दीपावली का उत्सव भी मनाया जाता है। अमावस्या के दिन सबेरे स्नानादि से निवृत्त होकर पितरों और देवताओं की पूजा करनी चाहिए; घी, दही, खीर आदि से पार्वण करना चाहिए। रोगी और बालक के अतिरिक्त इस दिन दिनभर किसीके भोजन का विधान नहीं है।

प्रदोष में—सायंकाल के समय—शुद्ध सुन्दर वस्त्रों से और विविध रत्नालंकारों से लक्ष्मी के मण्डप को सजाना चाहिए। फूल पत्ते चारों ओर लगा देने चाहिए, धूप-दीप आदि से मण्डप को सुवासित कर देना चाहिए। मण्डप में लक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति रखनी चाहिए और विधिपूर्वक उसका पूजन करना चाहिए। पूजन के बाद लक्ष्मी को शयन कराने का विधान है। अन्यान्य देवताओं के साथ लक्ष्मी भी राजा बलि के यहाँ कैद थीं। भगवान् विष्णु ने वामनावतार लेकर आज ही के दिन उन्हें बन्धन से मुक्त किया और आज ही के दिन वे क्षीरसागर में जा

सोयी थीं। इसीसे आज अपने घरों में उनके शयन की समुचित व्यवस्था—शक्ति के अनुसार—करनी चाहिए।

लक्ष्मी का पूजन कर लेने के उपरान्त चारों प्रकार के नाना पदार्थ बनाकर उन्हें भोग लगावे और फिर प्रसाद रूप से स्वयं उन व्यंजनों का भोजन करे। उसके बाद रात्रि-जागरण करके लक्ष्मीपूजन का उद्यापन करे और सारे घर में मिट्टी के दीपक में सरसों का तेल भरकर जलावे। आज की दीपावली बड़ी दीवाली कही जाती है। आज खूब रोशनी करनी चाहिए, सारे घर को प्रकाश से भर देना चाहिए, समूचे मकान की सफ़ाई और स्वच्छता रखनी चाहिए।

दीपावली के उत्सव में अगर कुछ अच्छाइयाँ हैं, तो कुछ बुराइयाँ भी ज़रूर आ गयी है। दीपावली के हफ़्तों पहले से लोग मकान की सफ़ाई करवाते हैं, घर के सामानों को नये सिरे से देख भाल कर सजाकर रखते हैं, लक्ष्मी का पूजन करते हैं, अपने हृदयों में एक प्रकार का नया जीवन, नयी प्रसन्नता भर लेते हैं, यह सब बातें बहुत अच्छी हैं और इनका होना आवश्यक है। लेकिन दीपा-वली के दिन जुए की जो प्रथा चल गयी है वह हानिकर और निन्दनीय है। उसे सर्वथा रोक देने की आवश्यकता है।

लक्ष्मी पूजन और दीपावली

दीपावली के दिन जुए की प्रथा क्यों चली, यह जानने के लिए हमें राजा बलि के समय का इतिहास देखना पड़ता है। बलि अत्यन्त शक्तिशाली और धर्मात्मा राजा था। उसने अपनी शूरता और तपस्या से तीनों लोकों पर अपनी प्रभुता जमा रक्खी थी। विष्णु भगवान् ने वामनावतार धारण कर दीवाली के इन्हीं तीन दिनों में उसे छलकर पाताल में भेज दिया था। बलि धर्मात्मा था ज़रूर, मगर ऐश्वर्य और शक्ति पाकर कौन पागल नहीं हो जाता? उसने भी शक्तिमान् होकर अन्याय और अत्याचार किया, देवताओं को कष्ट पहुँचाया और राक्षसों ने उस राज्य में जुआ-शराब आदि का ख़ूब प्रचार किया। दीपावली के दिन जुआ खेलने का उद्देश्य उस राज्य की स्मृति दिलाना मात्र ही रहा होगा। लेकिन अब यह प्रथा भीषणरूप धारण करती जा रही है और इससे स्पष्ट हानि हो रही है। इसलिए, इसको रोक देने का प्रयत्न करना ही अधिक वांछनीय है।

रक्षा बन्धन

राखी या रक्षाबन्धन बहुत मशहूर त्यौहार है। इसे सब लोग जानते हैं और प्रायः यह सब जगह प्रचलित भी है। श्रावण की पूर्णिमा को यह त्यौहार होता है। इस दिन बहिनें अपने भाइयों के हाथ में राखी बाँधती हैं। कहीं कहीं इसे ब्राह्मण भी बाँधते हैं।

एक बार महाराजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा—भगवान्! कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे वर्ष भर के अमंगल दूर हो जायँ और सुख-शान्ति से दिन बीतें।

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—युधिष्ठिर! मैं तुमको उस त्यौहार की कथा सुनाता हूँ, जो इन्द्र की विजय-कामना से इन्द्राणी ने किया था। उस समय असुरों के साथ देवताओं की लड़ाई बड़ा भीषण रूप धारण कर रही थी। असुरों ने समस्त भूमण्डल के साथ ही देवलोक पर भी अधिकार जमा लिया था। देवता मारे-मारे फिर रहे थे। इन्द्र बहुत दुखी थे, चिन्तित भी। देवगुरु बृहस्पति से एक दिन उन्होंने कहा कि अब न तो चुप ही बैठा जा सकता है और न यह जगह छोड़ कर कहीं भागा ही जा

सकता है। अब तो युद्ध अनिवार्य है। न जाने उसका परिणाम क्या होगा!

इन्द्राणी यह बात सुन रही थीं। उन्होंने कहा—मैं एक ऐसा उपाय करूँगी जिससे आपकी विजय अवश्यम्भावी हो जायगी।

दूसरे ही दिन श्रावणी पूर्णिमा थी। ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्ति पढ़वा इन्द्राणीने वह राखी इन्द्रके हाथ में बाँध दी। इन्द्र ने दैत्यों पर आक्रमण किया। घोर युद्ध हुआ। अन्त में राक्षसों की पराजय हुई। यह सब रक्षाबन्धन का ही प्रभाव था।

युधिष्टिर ने पूछा—हे कृष्ण! यह त्यौहार कब और किस प्रकार किया जाता है, कृपा कर आप मुझको बतलाइये।

श्रीकृष्ण बोले—श्रावण की पूर्णिमा को यह रक्षा बन्धन होता है। बहिनें भाई को, स्त्रियाँ पति को और कन्या पिता को यह राखी बाँधती हैं। किन्तु, ब्राह्मण के द्वारा राखी बँधवाने का ही अधिक रिवाज है। जो लोग इस रक्षा बन्धन को यथाविधि करते हैं, वर्ष भर तक उन्हें कोई कष्ट-क्लेश नहीं होता और वे रोग-दोष से दूर रहते हैं। राखी बाँधते समय ब्राह्मणों को निम्न लिखित श्लोक पढ़ना चाहिए—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल॥

होली

होली फागुन महीने की पूर्णिमा को होती है। घासफूस और लकड़ियों का एक बड़ा ढेर इकट्ठा करके वेदमंत्रों के साथ अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए और हवन करना चाहिए। हवन के उपरान्त निम्न लिखित श्लोक से उसके पूजन का भी विधान है।

अहकूटाभयत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूति-भूतिप्रदायिनीम्॥

पूजन के उपरान्त होली का भस्म शरीर पर लगाया जाता है। उस समय लोग यह श्लोक पढ़ते हैं—

वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च।
अतस्त्वं पाहि मां देवि! भूति भूतिप्रदा भव॥

प्रदोष में—सायंकाल के बाद—भद्रा रहित लग्न में होलिका दहन किया जाता है। होलिका क्यों और किस उद्देश्य से मनायी जाती है, इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न लोगों का भिन्न-भिन्न मत है। कुछ लोग इसे नवीन संवत्सर का आरंभ और वसन्तागम के उपलक्ष्य में किया हुआ यज्ञ समझते हैं और कुछ लोग इसे केवल अग्नि का पूजन मानते

हैं। जो कुछ भी हो, होली के इस त्यौहार में एक नवीन स्फूर्ति और जीवन हमें मिलता है, इस में कोई सन्देह नहीं।

यह निश्चय करना भी आसान नहीं मालूम पड़ता कि होलिका का त्यौहार कबसे प्रचलित हुआ। कुछ लोग इसे प्रह्लाद को गोद में लेकर अग्नि में बैठनेवाली हिरण्य-कशिपु की बहन या प्रह्लाद की बुआ ढूँढ़ा की स्मृति पर ही प्रचलित हुआ समझते हैं। हिरण्यकशिपु ने जब प्रह्लाद को अग्नि में जलाये जाने की आज्ञा दी, तो यही ढूँढ़ा उनको गोद में लेकर अग्नि में जा बैठी। अग्नि, प्रह्लाद का तो कुछ न कर सकी, पर, ढूँढ़ा जलकर खाक हो गयी। कुछ लोगों का ख्याल है कि यह पूतना का स्मारक है और कुछ लोग कहते हैं कि ढूँढ़ा प्राचीन काल की एक राक्षसी थी, जो बालकों को मार डालती थी। उसी समय बुरी गालियाँ देकर और आग लगा कर उसे निकालने का प्रयत्न किया गया, अब भी—जिसकी स्मृति इस रूप में शेष रहगयी है—यह वही त्यौहार है। किन्तु कुछ लोग इसका संबन्ध काम दहन से भी बतलाते हैं। उनका खयाल है कि शिवने अपने कोपानल से कामदेव को जला डाला था, तभी से यह त्यौहार होता है।

होली का त्यौहार बड़े ठाट से मनाया जाता है। हफ़्तों

राग-रंग मचा रहता है। होलिकादहन के दूसरे दिन लोग रंग-अबीर खेलते हैं और संध्या को सुन्दर नवीन वस्त्र पहन कर एक दूसरे से मिलते जुलते हैं, गाना बजाना करते हैं।

होलिका के त्यौहार में जहाँ अच्छाइयाँ हैं, वहाँ बुराइयाँ भी कम नहीं हैं। मादक द्रव्यों के प्रचार की बहुलता और गन्दी गालियाँ गाना, यह एक बहुत बुरा रिवाज है जिसका इस उत्सव में बहुत अधिक होना अखरता है। इस रिवाज को रोकने का उद्योग करना चाहिए।

जीवत्पुत्रिका व्रत

यह व्रत कुआर की अष्टमी तिथि को होता है। इसी दिन होनेवाले महालक्ष्मी अष्टमी का व्रत इससे भिन्न है। जीवत्पुत्रिका व्रत वे स्त्रियाँ करती हैं जो पुत्रवती हैं। इस व्रतको करने से पुत्रशोक नहीं होता। अतएव इस व्रत का स्त्रियों में बड़ा आदर है। इस व्रत को वे निर्जल रह कर करती हैं। दिन रात उपवास करके दूसरे दिन वे पारण करती हैं।

जिस घटना के उपलक्ष्य में यह व्रत किया जाता है वह बहुत ही अद्भुत और दया का उज्वल उदाहरण है।

राजा जीमूतवाहन बहुत बड़े दयालु हो गये हैं। एक दिन वे पर्वतविहार के लिए गये हुए थे। उसी पर्वत पर मलयवती नाम की एक राजकन्या देव पूजन के लिए गयी हुई थी। राजपुत्र राजकुमारी दोनों ने दोनों को देखा। दोनों के हृदयों में एक नये भावकी उत्पत्ति हुई। राजकुमारी के पिता और भाई इसी राजकुमार से राजकुमारी की शादी करना चाहते थे। इसीलिए राजकुमारी का भाई राजकुमार को ढूँढ रहा था। वह ढूँढते ढूँढते वहाँ पहुँचा

जहाँ राजकुमार और राजकुमारी थे। राजकुमारी अपने भाई के साथ चली गई। राजकुमार भी अपने साथी के साथ चले गये।

राजकुमार पर्वतपर भ्रमण कर रहे थे उस समय किसी के विलाप की ध्वनि सुनायी पड़ी। राजकुमार उसी ध्वनि की ओर चले। वहाँ पहुँचनेपर उन्हें मालूम हुआ कि शंखचूड़ सर्पकी माता रो रही है। उसके एकही पुत्र था वह भी आज गरुड़ के भोजन के लिए आत्मसमर्पण करने जा रहा है। राजकुमार को ये बातें मालूम हुई, वे वहाँ से चल पड़े।

एक स्थान नियत था जहाँ समय पर गरुड़ आता था और वहाँ एक सर्प आकर पड़ जाता था। उसे गरुड़ खाकर चल देता था। ऐसाही इनमें समझौता था। आज जीमूतवाहन ही उस जगह पर लेट गये। गरुड़ आया और उसने साँप समझ कर जीमूतवाहन पर चोंच मारी। जीमूतवाहन शान्त होकर पड़े रहे। गरुड़ को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा। जीमूतवाहन ने कहा—आपने खाना बन्द क्यों कर दिया? इस समय भी मेरी नाड़ियों से खून बह रहा है मेरे शरीर में इस समय भी माँस है और तुम्हारी भूख भी बुझी नहीं मालूम पड़ती है; फिर तुमने खाना बन्द क्यों कर दिया?

गरुड़ को पश्चात्ताप हुआ, वह चुप रहा। जीमूतवाहन चुपचाप वहीं पर रहे। गरुड़ सोचने लगा, एक यह है जो दूसरों की जान बचाने के लिए अपना प्राण दे रहा है और एक मैं हूँ जो अपनी भूख बुझाने के लिए दूसरों के प्राण लेता हूँ। गरुड़ के मनमें अनुताप बढ़ने लगा। उसी अनुताप के प्रकाश में गरुड़ ने अपना कलंकित रूप देखा। वह प्राय-श्चित्त करने के लिए तयार हुआ। उसने जीमूतवाहन को छोड़ दिया, पर सन्तोष नहीं हुआ। उसने जीमूतवाहन से वर माँगने के लिए कहा। जीमूतवाहन ने कहा यदि आप प्रसन्न हैं तो इन मरे हुए साँपों को जिला दीजिए और आज से साँपों को न मारने की प्रतिज्ञा कीजिए। गरुड़ ने वैसा ही किया।

राजकुमार का साथी, उनके माता पिता तथा राजकुमारी के भाई आदि राजकुमार को ढूँढते हुए वहाँ पहुँचे। राज-कुमार जीमूतवाहन को पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उस दिन कुआर के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि थी।

इसी घटना के उपलक्ष्य में जीवत्पुत्रिका व्रत किया जाता है। उस दिन ऊपर लिखी कथा व्रती स्त्रियाँ सुनती हैं ब्राह्मण को दक्षिणा देती हैं।

यह व्रत थोड़े ही दिनों से प्रचलित हुआ है, अतएव

धर्मशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में इसके विषय में कुछ लिखा नहीं मिलता।

अन्नकूट

कातिक महीने के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को यह उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव द्वापर युग के अन्त से चला आता है और वेदों में भी इसका पूर्व से ही उल्लेख है। इससे यह वैदिक महोत्सव भी कहा जा सकता है।

इस सम्बन्ध की एक बहुत प्राचीन कथा है। एक बार भगवान कृष्ण अपने साथी गोपों के साथ वनमें गउएँ चरा रहे थे। उनके साथियों ने उस दिन वनमें तरह तरह के फूल पत्ते और लताएँ तोड़ीं। कृष्ण ने पूछा—तुम लोग इन फूल पत्तों का आज क्या करोगे ? उन्होंने आश्चर्य से कहा—अरे ! तुम्हें मालूम नहीं ? आज इन्द्र की हमारे यहाँ पूजा होगी, वही इन्द्र जो देवताओं का स्वामी है, जिसने वृत्रासुर का नाश किया है और जो मेघों का नायक है। उसीकी आज्ञा पाकर जब मेघ बरसते हैं तब हमारे यहाँ अन्न पैदा होता है। जानते नहीं ?

कृष्ण ने हँस कर उत्तर दिया—अरे नहीं भाई, तुमलोग कैसे मूर्ख हो ? भला इन्द्र में क्या सामर्थ्य है, जो वह पानी

बरसा दे और हमारी सहायता करे ? अधिक शक्तिशाली तो यह गोवर्धन पर्वत है जो सुभिक्षका देनेवाला और जल बरसाने वाला है। फिर हम लोग इसकी पूजा क्यों न करें ?

बात गोपों को जच गयी—कृष्ण ठीक ही तो कहते हैं ? क्यों न हमलोग इस गोवर्धन पर्वत की पूजा करें ? हठीले ग्वालवालों ने आकर ये बातें अपने अपने घर में कहीं, घरवालों की समझ में भी यह बात आ गयी। उस बार ब्रज में इन्द्र की जगह गोवर्धन की ही पूजा हुई।

कहीं से नारद-देवता को यह ख़बर लगी। दौड़े हुए मृत्युलोक में आये और सारी बातें आँखों देखकर इन्द्र के पास गये। कहने लगे कि हे इन्द्र ! तुम यहाँ राज्यसिंहासन पर बैठ कर मौज उड़ाते हो और दुनियाँ में क्या हो रहा है इसकी तुम्हे कुछ खबर ही नहीं है। ब्रजवाले तुम्हारी पूजा न करके कृष्ण की आज्ञा से गोवर्धन की पूजा कर रहे हैं। दो दिन बाद वे तुम्हारे राज्य पर भी आँख गड़ा सकते हैं !

बात इन्द्र-महाराज को बहुत बुरी लगी। क्रोध से वे अधीर हो गये। साम्वर्तकादि प्रलय के मेघों को बुलाकर उन्होंने आज्ञा दी कि ब्रज पर जा कर तुम लोग इस प्रकार से बरसो जिसमें उसका नाम निशान न रह जाय।

इन्द्र की आज्ञा पा कर प्रलयकालीन मेघ व्रज की ओर उमड़ चले। वहाँ जा कर वे छप्पन धारों में बरसने लगे। व्रजवासी घबरा गये, त्रस्त हो गये। त्राहि त्राहि करते हुए कृष्ण के पास गये—हे भगवान् ! अब क्या होगा ? इन्द्र व्रज को डुबा देना चाहता है !!

कृष्ण ने व्रजवासियों को अभय दिया। गउओं के साथ समस्त व्रज को लेकर वे गोवर्धन की तराई में चले गये और उन्होंने अपनी कनिष्ठा उँगली पर पर्वतको उठा लिया। सात दिनों तक व्रजवासी अपनी गउओं के साथ गोवर्धन की छाया में आनन्दपूर्वक रहे। उनकी कोई क्षति न हुई।

उधर मेघ बरसते ही रहे, बिजली कड़कती ही रही, किन्तु उससे व्रज का कुछ बिगाड़ न हो सका। हार कर मेघों ने बरसना बन्द कर दिया। इन्द्र को जब यह बात मालूम हुई तब वह आ कर कृष्ण के पैरों पर गिरा। अपने इस व्यवहार के लिए क्षमा माँगी।

इसी घटना का स्मारक यह उत्सव है। अन्न उपजाने में वर्षा का बड़ा भाग है, इसीसे इसे अन्नकूट या गोवर्धन पूजा भी कहते हैं। यों तो, यह उत्सव भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में मनाया जाता है किन्तु व्रज में इस तिथि पर बड़ी धूमधाम होती है।

छठ

कार्तिक शुक्ल षष्ठी को यह व्रत किया जाता है। इसे स्त्रियाँ करती हैं। इसको करने वाली स्त्रियाँ पति-पुत्र, धन-धान्य और सुख-समद्धि से सदा परिपूर्ण रहती हैं और संसार में सब सुखों को भोगती हुई मृत्यु के उपरान्त अमर गति प्राप्त करती हैं।

यह व्रत बड़े नियम और निष्ठा से किया जाता है। षष्ठी के दिन, दिन और रात भर निर्जल व्रत रक्खा जाता है और सन्ध्या के समय डूबते हुए सूर्यकी विधिपूर्वक पूजा की जाती है और उन्हें अर्घ्य दिया जाता है। दिनमें पकाये हुए नाना प्रकार के पक्वान्नों का भोग लगाया जाता है। विशेष शुद्धता से—ईश्वर का स्मरण करते हुए दिन रात व्यतीत करना पड़ता है और दूसरे दिन—सप्तमी के प्रातः काल—सूर्योदय के समय पुनः सूर्य को अर्घ्य देकर मुँह में जल डाला जाता है।

इस व्रत का भारतवर्ष में सर्वत्र प्रचार नहीं है, किन्तु कई प्रान्तों में इस व्रत का बड़ा महत्व समझा जाता है और बड़े उत्साह तथा श्रद्धा से लोग यह व्रत करते हैं।

आर्य समाज के उत्सव

नवसंवत्सरोत्सव

यह उत्सव नए वर्ष के उपलक्ष में मनाया जाता है। नए वर्ष की शुभ कामना के लिए इस दिन विशेष उत्सव मनाये जाते हैं। इस दिन प्रत्येक आर्य प्रातः काल अपने घर को विधिपूर्वक साफ करे तत्पश्चात् स्वदेशी वस्त्र पहिन कर सपरिवार साधारण हवन करे। इस दिन भोजन भी सुन्दर २ रुचि के अनुकूल तयार करना चाहिए। हवन के समाप्त होने पर दो पहर को प्रीतिपूर्वक एक साथ मिलकर भोजन करे। बन पड़े तो और अपने हित मित्रों को भी उस दिन निमंत्रित कर भोजन करावे। सन्ध्या के समय सभी आर्यसमाजी किसी बड़े मैदान में एकत्रित होकर संवत्सर विषय पर तथा इसके इतिहास सम्बन्धी प्रश्नों पर व्याख्यान आदि दें। मनोहर भजन भी हों। ऋतु के अनुकूल खेल कूद भी

होना आवश्यक है। इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक समस्त दिन व्यतीत कर नए वर्ष की मङ्गल कामना करना ही इस उत्सव का मुख्य ध्येय है।

आर्य समाज का स्थापना दिवस

१९ वीं शताब्दी में सच्चे वैदिक धर्म की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गयी थी। नाना प्रकार के आडम्बर तथा मत तांत्रिकों द्वारा फैलाए जा रहे थे। लोग अपने वास्तविक धर्म का स्वरूप देख नहीं पाते थे। उन्हे नकली पाखण्डी साधू तथा पुरोहित अपने रास्ते ले जा रहे थे। एक ओर तो इस प्रकार धर्म का नाश हो रहा था और दूसरी ओर पश्चिमीय सभ्यता अपना सिक्का जमा रही थी। कहने का तात्पर्य यह कि चारों ओर से इस बात का प्रयत्न हो रहा था कि भारतीय अपने सच्चे वैदिक धर्म को परित्याग कर इस माया जाल में फँस जायँ। पर ऐसा होना स्वीकार नहीं था। भारत के एक अमूल्य रत्न के हृदय में यह बात खटकी और वह इसके विरोध में अपना कमण्डल लेकर निकल पड़ा। वह थे ऋषि दयानन्द। उन्होंने लोगों को अपने सच्चे धर्म का मार्ग दिखाया। उन्हें बताया कि तुम जिस मार्ग पर

हो, उससे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। यदि सुख चाहते हो, अपने वैदिक धर्म का ज्ञान चाहते हो तो मेरे बताए मार्ग पर चलो।

ऋषि दयानन्द ने बड़ी छानबीन के बाद सनातन वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना की। लोगोंने उनके सिद्धान्तों का महत्व स्वीकार किया। आर्य समाज नामकी एक संस्था कायम की। जिसका एकमात्र उद्देश्य था वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करना। उसी समाज की स्थापना ऋषि ने चैत शुदि पंचमी दिन शनिवार संवत् १९२३ वि० तदनुसार १० अप्रैल १८७५ ई० को किया। बम्बई में प्रथम आर्य समाज की स्थापना हुई थी। आज तो भारत क्या विदेशों में भी समाज की शाखाएँ खुली हुई हैं। जो वैदिक धर्म की महत्ता संसार के लोगों को बता रही है। इसी उत्सव के स्मृति दिवस में यह उत्सव मनाया जाता है।

इस दिन अपने घर दुआर को लीप-पोत कर सुन्दर तरीके से साफ करे। सुन्दर वस्त्र धारण कर हवन करे। इस दिन आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहिए।

प्रातःकाल एक दल होकर सभी आर्यसमाजी नगर संकीर्तन करें। दो पहर को या सायंकाल सुभीते के अनुसार

समाज मन्दिर में एकत्र होकर सभा करें। सर्व प्रथम तो सरस्वती देवी की महिमा संबन्धी कुछ वेदमन्त्रों का पाठ और उनकी व्याख्या हो। फिर आर्यसमाज के उद्देश्य, उसकी उपयोगिता और उसका पूर्व इतिहास लोगों को बताया जाय। उस दिन नए सदस्य बनाए जायँ। आज के दिन ग्राम ग्राम में नई शाखाएँ खोली जाँय और आर्य-समाज के स्थापना दिवस की स्मृति कायम की जाय।

दीपावली

(श्रीमद्दयानन्द निर्वाण)

दीपावली का विशेष सम्बन्ध तो वैश्यो से है। कहा भी जाता है कि यह पर्व वैश्यों का है। पर इस पर्व की विशेषता है, इसी दिन भारत का एक उज्वल रत्न आर्यसमाज का प्राण इस नश्वर जगत् को त्याग कर सर्वदा के लिए हम लोगों से अलग हो गया था। विक्रमी संवत् १९४० की यह घटना है। स्वामी दयानन्द ने अपनी बलि दी। समाज की मंगल कामना करते हुए वे परमधाम को चले गये। मरते समय भी उन्होंने यही कहा—प्रभो तेरी इच्छा पूर्ण हो। उस महा-प्रस्थान दिवस को बड़े समारोह के साथ मनाना प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है।

दीपावली उत्सव मनाने के पूर्व पहले से ही लोग अपने २ घरों को साफ सुथरा करते हैं। उस दिन नए अन्नों का खीर बनाकर उससे हवन करना चाहिए। हवन के साकल्य में धान का लावा अवश्य होना चाहिए। दोपहर बाद प्रचलित प्रथा के अनुसार अपने हित मित्रों को मिठाई बाँटनी चाहिए। रात्रि समय में अपने २ घरों को दीपों से सजाना चाहिए।

संध्या समय समाज मन्दिर में एकत्रित होकर श्री मद्दयानन्द निर्वाण दिवस मनाना चाहिए। स्वामी जी के सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहिए।

मकर-संक्रान्ति

इस दिन सामान्य-पद्धति के अनुसार घर को शुद्ध कर नवीन वस्त्र धारण करे। सपरिवार हवन करे। आज के साकल्य में तिल और शक्कर की अधिकता होना चाहिए। सामान्य हवन के अतिरिक्त नीचे लिखे मन्त्रों से भी हवन करे।

ओ३म् सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू स्वाहा। अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेताम्। स्वाहा। द्यावापृथिवी कल्पन्ताम्। स्वाहा। आपओषधयः कल्पान्तम्। स्वाहा। अग्नयः

पृथङ्मम ज्येष्ठाय च सव्रताः स्वाहा। ये अग्नयः समनसो-अन्तरा द्यावा पृथिवी इमे हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्दुमिवदेवा संविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वाद् ध्रुवे सीदतम् स्वाहा। यजु० अ० १४ मं० २७॥

ओ३म् तपश्तपस्यश्च शैशिरावृतू। स्वाहा। अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेताम् :स्वाहा। द्यावापृथिवी कल्पन्ताम्। स्वाहा। अग्नयः पृथङ्मम ज्येष्ठाय च सव्रताः स्वाहा। ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमें हैमन्तिकावृतू अभिकल्प माना इन्दुमिवदेवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदताम्। स्वाहा। यजुर्वेद अ० १५ मं० ५७५

आहुतियाँ देने के वाद वचे हुए तिल के लड्डू को समागत सज्जनों को वाँटा जाय। उस दिन अपनी शक्ति के अनुसार कम्बल दीन दुखियों को दान देना चाहिए।

वसन्त-पंचमी

प्रातःकाल सामान्य पर्वपद्धति की तरह घर की सफाई करे। सपरिवार नए पीले वस्त्र पहिनकर होम करे। आज हलुवे में केशर या हल्दी मिला कर उसी से आहुति दे। सायंकाल फलों का सहभोज करे। बच्चों को खेल कूद में

शरीक करावे तथा उत्तीर्ण बालकों को पारितोषिक भी दे। खेल कूद कर यह वसन्तोत्सव मनाना चाहिए।

रामनवमी या रामजयन्ती

मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के जन्म दिवस की शुभ तिथि चैत शुदी नवमी है। वीर पूजा की प्रथा रहे, यही इस जयन्ती का उद्देश्य है। और पर्वों के अनुसार इस दिन भी घर शुद्ध कर विधिपूर्वक हवन करे। इस दिन शक्ति के अनुसार स्वादिष्ट भोजन बनाकर परिजनों के साथ दो-पहर में भोजन करे। शाम को समाज मन्दिर में एकत्रित होकर ईश्वर की प्रार्थना करे। इसके बाद श्री रामचन्द्र के गुणों का, उनके इतिहास का वर्णन करे वैदिक मंत्रों का गान हो, लोगों को अच्छी तरह से रामचन्द्र के गुणों का परिचय कराया जाय।

हरि-तृतीया (हरियाली तीज)

यह पर्व विशेष कर स्त्रियों का माना जाता है। श्रावण शुदी तृतीया को स्त्रियाँ अच्छे २ पकवान बनाती हैं। अपने बड़े बूढ़ों को खिलाती हैं। उनसे आशीर्वाद पाती हैं। सायंकाल को सभी स्त्रियाँ अपनी अपनी सहेलियों के साथ

झूला झूलती हैं। अच्छे २ गीत गाती हैं। वर्षा ऋतु का यह उत्सव स्त्रियों के लिए परम सुखकारी है। अविद्या के कुसंस्कार से जो अश्लील गीत हमारे समाज में गाए जाते हैं, हमारी विदुषियों को न गाने चाहिएँ।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

भाद्रकृष्ण अष्टमी को श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म हुआ था। आज तक आर्य जनता उनकी जयन्ती मनाती जाती है। इस दिन और पर्वों के समान घर साफ सुथरा कर स्वदेशी वस्त्र धारण कर हवन करे। अच्छे २ भोजन करे। संध्या समय समाज मन्दिर में जन्माष्टमी का उत्सव मनावे। श्री कृष्ण के चरित्र का ज्ञान लोगा को कराया जाय। इस दिन विशेष कर मल्लयुद्ध आदि का परिदर्शन कराना चाहिए। कारण इस विद्या में श्रीकृष्णचन्द्र बचपन से ही पारंगत थे। श्रीमद्भगवद्गीता का पारायण भी इस दिन किया जा सकता है।

विजया दशमी

पुराने जमाने में वर्षाऋतु भर यात्रा या व्यापार आदि बन्द रहा करता था। जिसका प्रारम्भ इसी विजयादशमी से होता था। आज कल तो किसी प्रकार की असुविधा

नहीं है। हर जगह रेल या मोटर से आदमी आ जा सकते हैं, वर्षा के कारण किसी प्रकार की रुकावट नहीं हो सकती, पर प्राचीनता कायम रखने के लिए अपनी संस्कृति नष्ट न हो इस कारण आज भी आर्य इस उत्सव को उसी प्रकार मनाते हैं।

इस दिन शस्त्रों को साफ किया जाता है, वाहन सजाए जाते हैं, इनकी मन्त्रों सहित पूजा की जाती है। दोपहर को स्वादिष्ट व्यञ्जन तयार करना चाहिए। आज के दिन लौकी के रायते के खाने की प्रथा है, संध्या को अच्छे २ वस्त्र पहिन कर अपने अस्त्रों से सुसज्जित हो कर अपने २ वाहनों पर या पैदल नगर के बाहर कुछ दूर तक यात्रा करनी चाहिए। उस दिन अस्त्र संचालन भी करना चाहिए अपने आर्य जाति का यही गौरव है।

दयानन्दबोध-रात्रि

साधारण घटनाएँ कभी कभी बड़े मार्के की समझी जाने लगती हैं। उसी के आधार पर बड़ा उथल पुथल मच जाता है। भाप से बटलोई का ढक्कन हिलता है, यह सभी देखा करते हैं, पर एक की आँख ने इसे देखा और वाष्प इञ्जिन की कल्पना उसके द्वारा की, जो आज सब जगह

व्याप्त है। कहने का तात्पर्य यह कि छोटी २ घटनाएँ किसी के लिए बड़ा काम कर गुजरती हैं।

गुजरात प्रान्त में टंकारा नाम का एक गाँव है। इसमें ब्राह्मण अधिक संख्या में रहा करते हैं। ये लोग शिव के बड़े भक्त होते हैं। पं० करसन लाल जी तिवारी भी इसी ग्राम में रहते थे। उनके कई पुत्र थे, जिनमें दयाल नामका एक बालक बड़ा ही तेजस्वी तथा प्रतिभावान था। गुजरात प्रान्त में शिवरात्रि का पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। संवत् १८९४ की शिवरात्रि को दयालजी का परिवार भी व्रत रहा। उनमें दयाल जी सबके पहले व्रत कर रहे थे। पिता ने सब विधि बता दी थी। रात्रि को जागरण का समय आया। बालक दयाल बड़ी श्रद्धा के साथ जाग रहा और लोग तो आधी रात के बाद सो गए, पर वह जगा ही रहा। कुछ देर बाद बालक ने क्या देखा कि एक चूहा शिवलिंग पर चढ़कर उन पर चढ़ाए अक्षत को खा रहा है। यह देखकर उसके हृदय में शंकाएँ उत्पन्न हुई। सोचने लगा जो शिव सर्वशक्तिमान हैं, जिनके विकराल गण हैं, वे क्या इस प्रकार अपने ऊपर चढ़े हुए चूहे का कुछ भी नहीं कर सकते। ये शिव पत्थर के हैं। असली शिव दूसरे हैं। उन्हें खोजना चाहिए। अपने पिता को

जगाकर अपनी शंका कही। पिता ने वहुत कुछ समझाया पर वालक के मन में कुछ वात वैठी नहीं। उसने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं शिव का साक्षात्कार किए विना उसका पूजन कभी न करूँगा।

चूहे की इस साधारण घटना ने दयाल जी को दयानन्द बनाया। वास्तव में इसी शिवरात्रि ने दयानन्द को बोध प्रदान किया था। इसी कारण इस वोध रात्रि को आर्य जनता आज तक उत्सव के रूप में मनाती है।

जिस प्रकार से वीर जयन्तियाँ मनायी जाती हैं; उसी प्रकार यह उत्सव भी मनाया जाता है। आज के दिन दयानन्द का गुणानुवाद करना चाहिए। जगह २ सभाएँ करके ऋषि के उपदेशों का प्रचार करना चाहिए।

श्री लेखराम वीर तृतीया

पंजाब प्रान्त में झेलम जिले के सैदपुर गाँव में रहनेवाले श्रीतारासिंह के संवत् १९१५ बिक्रमी के ८ सौर चैत्र दिन शुक्रवार के दिन एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस वालक का नाम लेखराम था। यही आगे चलकर धर्मवीर पं० लेखराम के नाम से प्रसिद्ध हुए। आप के समान अध्ययनशील पुरुष होना असम्भव सा है। बचपन से ही आप भावुक तथा

धार्मिक थे। बचपन में आप फारसी पढ़ते थे। कारण इसी की शिक्षा उस समय दी जाती थी। बड़े होने पर आप पुलिस में सारजेण्ट के पद पर नियुक्त हुए। धर्म के तत्व का अनुसन्धान आप बड़ी तन्मयताके साथ करते थे। पहले आप श्रीकृष्ण की बड़ी भक्ति किया करते थे। भगवद्गीता का नित्य पाठ करते थे।

उन्हीं दिनों लुधियाने के मुन्शी कन्हैयालाल अलख-धारी के ग्रंथ पढ़ने का अवसर हमारे पंडित जी को मिला। इससे आपकी श्रद्धा समाज पर विशेष हो गयी। उस दिन से आप ऋषि दयानन्द के बनाए ग्रन्थ मँगा २ कर अध्ययन करने लगे। फिर तो वे एक ऐसे आर्य बने जिससे समाज का आज भी मस्तक ऊँचा है। आप ने स्वामी जी से मिलकर अपने संदेहों का समाधान किया। पं० लेखराम बड़े विद्वान् थे, आपने फारसी में आर्य साहित्य के बड़े २ ग्रंथ बनाए।

उस समय मुसलमान पण्डित जी की विद्वत्ता से जला करते थे, उनसे शास्त्रार्थ करके कोई भी मुसल्मान जीता नहीं। धीरे २ इनके प्रति मुसलमानो में ईर्षा उत्पन्न होने लगी। अन्त में एक दिन एक मुसलमान आपके पास आया और कहने लगा कि मैं पहले हिन्दू था, अब मुसल-

मान हो गया हूँ। आप मुझे शुद्ध कर फिर हिन्दू बनालें। यह तो हमारे पण्डित जी के लिए अभीष्ट था ही। रोज उसे अपने साथ बैठाकर धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। एक दिन संध्या समय उसी मुसलमान ने अँगडाई लेते हुए पण्डित जी के उदर में छूरा भोंक दिया। यह गहरी चोट वे सहन नहीं कर सके। डाक्टरों के उपचार आदि करते रहने पर भी आपने अपनी बलि धर्म पर दे दी। फाल्गुन सुदी ३ संवत् १९५३ बि० तदनुसार ६ मार्च १८६९ ई० को रात्रि के दो बजे आपने अपनी इह लीला संवरण की।

आपकी पवित्र स्मृति रक्षा के निमित्त फाल्गुन सुदी तीज को बीर जयन्ती मनायी जाती है। इस दिन सायंकाल समाज मंदिर में सभी आर्य एकत्रित हो कर आप के गुणों का वर्णन करते हैं। आपके जोशीले भजन गाते हैं। इस प्रकार उत्सव मनाकर पं० लेखराम की स्मृति कायम रखते हैं।

होलिकोत्सव

फाल्गुन पूर्णिमा के प्रातःकाल नए वस्त्र पहिन कर हवन करने के लिए बैठे। आज मोहनभोग (नए गेहूँ का हलुआ) तयार करके उसका भी हवन करे। पूर्णाहुति के

बाद बचे हुए हलवे को आपस में बाँट कर भोजन करे दोपहर को आर्यसमाज मन्दिर में जाकर उत्सव मनावे। उस दिन प्रति सम्मेलन किया जाय आपस के मनोमालिन्य दूर कर आपस में मिला जाय। इस उत्सव में सरल प्रीतिभोज पान इलायची इतर का आयोजन होना चाहिए। भजन मण्डली की भी आवश्यकता है। अच्छे २ सामाजिक भजन हों। इस प्रकार आनन्द सहित यह उत्सव मनाना चाहिए।